* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

संसार-वृक्ष

भगवान् श्रीद्वारकानाथजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१ | गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, दिसम्बर २०१७ ई० | संख्या १२

पूर्ण संख्या १०९३

श्रीद्वारकानाथजीकी वन्दना

शङ्खं प्रसारितसुखं स्वपदाश्रितानां चक्रं सदा दमितदानवदैत्यचक्रम्।
कौमोदकीं भुवनमोदकरीं गदाग्र्यां पद्मालयाप्रियकरं प्रथितं च पद्मम्॥
संधारयन्तमतिचारुचतुर्भुजेषु श्रीवत्सकौस्तुभधरं वनमालयाढ्यम्।
सिन्धोस्तटे मुकुटकुण्डलमण्डितास्यं श्रीद्वारकेशमनिशं शरणं प्रपद्ये॥

जो अपने चरणाश्रित भक्तोंके लिये सुखका प्रसार करनेवाले शंखको, सदा दैत्यों और दानवोंके दलका दमन करनेवाले चक्रको, सम्पूर्ण भुवनोंको आनन्द प्रदान करनेवाली कौमोदकी नामक श्रेष्ठ गदाको तथा पद्मालया (लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी)-का प्रिय करनेवाले प्रख्यात पद्म-पुष्पको अपनी अत्यन्त मनोहर चार भुजाओंमें धारण किये रहते हैं, जिन्होंने अपने वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न तथा कौस्तुभ-मणि धारण कर रखी है, जो वनमालासे विभूषित हैं तथा जिनका मुखमण्डल किरीट और कुण्डलोंसे अलंकृत है; उन सिन्धु-तटवर्ती श्रीद्वारकानाथजीकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ।

[पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' कृत 'श्रीद्वारकेशाष्टक'से]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, दिसम्बर २०१७ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

सन् २०१८ के लिये शुल्क
एकवर्षीय ₹२५०
पंचवर्षीय ₹१२५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

चालू वर्षका शुल्क
एकवर्षीय ₹२२०

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक US$ 50 (₹3000)**, **पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000)** — **Us Cheque Collection Charges 6$ Extra**

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	**09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—भगवान् अकारण सुहृद् हैं और परम करुणामय हैं; वे यह नहीं सोचते कि जीव सब दोषोंसे रहित होकर, परम विशुद्ध होकर मेरी शरणमें आयेगा, तभी उसे आश्रय मिलेगा। वे देखते हैं, केवल एक बात—जीव मुझको ही अनन्य गति समझकर मेरी शरणमें आना चाहता है या नहीं। यदि सचमुच चाहता है तो वह फिर चाहे जैसा भी पापी-तापी, दुराचारी-दु:खभारी, पतित-पीड़ित हो, भगवान् उसे अपना अभय आश्रय देते ही हैं।

याद रखो—भगवान्का दरबार सबके लिये सदा खुला रहता है, जो भी वहाँ जाना चाहता है, सचमुच जाना चाहता है—उसीको जाने दिया जाता है और एक बार वहाँ पहुँच गया कि फिर उसके पाप-ताप, दुराचार-दु:ख, पतन-पीड़ा सदाके लिये समूल नष्ट हो जाते हैं।

याद रखो—भगवान्के समान तुम्हारा अपना, सदा साथ देनेवाला आत्मीय, कभी किसी भी स्थितिमें घृणा न करनेवाला स्वामी और मित्र दूसरा कोई न है, न कभी हुआ है और न होगा। जिसको जगत्में कहीं भी स्थान नहीं मिलता, जो जगत्की दृष्टिमें सर्वथा नगण्य, तुच्छ, उपेक्षित और घृणित है, जिसको कहीं कोई भी अपना कहनेवाला तो है ही नहीं, दयाकी प्रेरणासे भी जिसकी ओर सुदृष्टिसे ताकनेवाला कोई नहीं है, उसको भी भगवान् उतना ही प्यार करते हैं, जितना किसी भी दूसरेको।

याद रखो—तुम कितना ही अपराध करो, कितना ही धोखा दो, कितना ही उनका तिरस्कार और अपमान करो; भगवान्के सहज प्यारमें कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता। तुम्ही जबतक मुख मोड़े रहोगे, तबतक उनके मधुर मुसकानभरे स्नेहपूर्ण वदनारविन्दकी झाँकीसे वंचित रहोगे, उनके स्नेह-सुधा-सागरमें अवगाहनका सौभाग्य नहीं पा सकोगे। इसमें चाहे कितना ही समय बीते; पर याद रखो—जिस क्षण तुमने उनकी ओर मुख मोड़ा, तुम देखोगे कि तुम्हारे किसी अपराधका, किसी धोखेका और तुम्हारे द्वारा किये हुए किसी तिरस्कार या अपमानका उन्हें मानो स्मरण ही नहीं है। जैसे स्नेहमयी जननीका वक्ष:स्थल शिशुके लिये सदा ही खुला रहता है, वैसे ही वे तुम्हें बड़े प्यारसे अपने हृदयसे चिपटानेको तैयार मिलेंगे।

याद रखो—इतनेपर भी जो जीव उनकी ओरसे मुख मोड़े रहनेमें ही अपना गौरव मानता है, उसके समान अभागा और कोई नहीं है। सारे पाप-ताप सदा उसके लिये मुँह बाये खड़े रहते हैं और वह अपने जीवनमें किसी भी स्थितिमें कभी भी सच्ची सुख-शान्तिका साक्षात्कार नहीं कर सकता।

याद रखो—मनुष्य जगत्में विषयोंकी दृष्टिसे चाहे जितना सौभाग्यवान् समझा जाय और जगत्में उसकी मान-प्रतिष्ठा तथा प्रशंसा-कीर्तिके चाहे जितने पुल बाँधे जायँ, असलमें वह बड़ा ही भाग्यहीन और निष्फल-जीवन है। मानव-जीवनकी सफलता भोगोंकी अधिकतामें नहीं है, वह तो प्रभुकी शरणागतिमें ही है।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

संसार-वृक्ष

श्रीरामावतारमें भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेकके समय सब देवताओंद्वारा स्तुति करके अपने-अपने धाम चले जानेपर चारों वेद बन्दीजनोंके वेशमें आकर परब्रह्म परमात्मा श्रीरामकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे प्रभु! आप ही इस संसाररूपी वृक्षके रूपमें प्रकट हैं—

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥

वेदशास्त्रोंने कहा—जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है; जो प्रवाहरूपसे अनादि है; इसकी चार त्वचाएँ, छः तने, पच्चीस शाखाएँ, अनेकों पत्ते और बहुत-से फूल हैं, जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकारके फल लगे हैं; जिसपर एक ही बेल है, जो उसीके आश्रित रहती है; जिसमें नित्य नये पत्ते और फूल निकलते रहते हैं; ऐसे संसारवृक्ष-स्वरूप (विश्वरूपमें प्रकट) आपको हम नमस्कार करते हैं।

इस संसार-वृक्षके विषयमें गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

उर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

अर्थात् आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपलके वृक्षको अविनाशी कहते हैं तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं—उस संसाररूप वृक्षको जो पुरुष मूलसहित तत्त्वसे जानता है, वह वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है।

यह संसार अश्वत्थ—पीपल वृक्षके समान है। अश्वत्थ भगवान्की विभूति है, अतः प्रणम्य है। संसार भी **'वासुदेवः सर्वम्'** के भावसे प्रणम्य है। परंतु अश्वत्थका एक तात्पर्य 'चल-दल' भी है अर्थात् उसके पत्ते एक क्षण भी स्थिर नहीं रहते, उसी प्रकार संसार भी अनित्य और नाशवान् है। यह संसार-वृक्ष बड़ा विचित्र है, इसका मूल ऊपर तथा शाखाएँ नीचेकी ओर हैं। वस्तुतः इस संसार-वृक्षकी उत्पत्ति और इसका विस्तार आदिपुरुष नारायणसे हुआ है, जो सर्वव्यापक होते हुए भी सगुणरूपसे सबसे ऊपर नित्यधाममें निवास करते हैं। संसार-वृक्षकी उत्पत्तिके ही समय ब्रह्माका उद्भव होता है, इस कारण ब्रह्मा ही इसकी प्रधान शाखा हैं। ब्रह्माका लोक आदिपुरुष नारायणके नित्यधामकी अपेक्षा नीचे है, इसलिये इस संसार-वृक्षको नीचेकी ओर शाखावाला कहा गया है। यह संसार-वृक्ष परिवर्तनशील होनेसे नाशवान् है, परंतु इसका प्रवाह नारायणसे है, अतः यह अनादि और अव्यय भी है। वेद इस संसार-वृक्षके पत्ते हैं, जो ब्रह्माजीरूपी मुख्य शाखासे प्रकट हैं। जिस प्रकार पत्ते वृक्षकी रक्षा और वृद्धि करनेवाले होते हैं, वैसे ही वेद-विहित कर्मोंसे संसारकी वृद्धि और रक्षा होती है, सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी मायासे उत्पन्न यह संसार भी वृक्षकी भाँति उत्पत्ति-विनाशशील और क्षणिक है, अतएव इसकी चमक-दमकमें न फँसकर इसको उत्पन्न करनेवाले मायापति परमेश्वरकी शरणमें जाना चाहिये; क्योंकि भगवान्की शरणमें जाना ही सम्पूर्ण वेदोंका तात्पर्य है।

अर्थ और रहस्यका भेद

[श्रीमद्भगवद्गीताके एक श्लोकका रहस्य]

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक बहुत ही सन्तोषी, सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मण थे, किंतु थे वे निर्धन। उनकी पत्नी बड़ी पतिव्रता, विदुषी, तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न और जीवन्मुक्त थी। उस देशके राजा भी तत्त्वज्ञानी, जीवन्मुक्त महात्मा थे। ब्राह्मणपत्नीने एक दिन विचार किया—मेरे पतिदेव सन्तोषी, सदाचारी और विद्वान् हैं, इसलिये वे मुक्तिके अधिकारी तो हैं ही, इनकी यदि हमारे जीवन्मुक्त राजासे भेंट हो जाय तो ये भी शीघ्र तत्त्वज्ञानी—जीवन्मुक्त हो सकते हैं। यह सोचकर उसने पतिसे प्रार्थना की—'पतिदेव! आजकल अपने शरीरनिर्वाहके लिये बड़ी ही तंगी हो गयी है और आयका कोई भी रास्ता नहीं दीखता। सुना जाता है, यहाँके राजा बड़े सदाचारी, जीवन्मुक्त महात्मा हैं तथा ब्राह्मणोंका आदर-सत्कार करनेवाले एवं परम उदार हैं, आप उनसे एक बार मिल लें तो वे आपका उचित सत्कार कर सकते हैं और शास्त्रविधिके अनुसार यदि राजा बिना याचना किये ही कुछ दे तो वह ब्राह्मणके लिये अमृतके समान है। यह आप जानते ही हैं।'

पण्डितजीने कहा—'तुम्हारा कहना ठीक है; परंतु मैं जबतक किसीका कोई उपकार न कर दूँ, तबतक अयाचक वृत्तिसे भी—बिना माँगे उससे दान लेकर जीवन-निर्वाह करना निन्दास्पद समझता हूँ; अतएव मैं ऐसा नहीं करूँगा, चाहे मुझे भूखों ही रहना पड़े।'

ब्राह्मणपत्नी बोली—'आप विद्वान् हैं, राजाको यथोचित उपदेश देकर उनका उपकार कर सकते हैं।' यह बात पण्डितजीको कुछ रुची, पर उनका मन राजाके पास जानेका नहीं होता था। अन्तमें पत्नीके बहुत कहनेपर वे राजी हो गये और राजसभामें चले गये। पण्डितजीके सद्‌गुण और सदाचरणोंकी ख्याति देशभरमें फैली हुई थी। राजाने पण्डितजीका बड़ा आदर-सत्कार किया। कुशलक्षेम-प्रश्नोत्तरके अनन्तर राजाने बहुत-सी स्वर्णमुद्राएँ मँगाकर पण्डितजीको भेंट कीं। पण्डितजीने अस्वीकार करते हुए कहा—'राजन्! आप बड़े उदार हैं, यह मैं जानता हूँ। परंतु मेरा एक नियम है, मैं किसीका उपकार किये बिना उससे अयाचितरूपमें भी धन नहीं लेता। आप मुझे कोई काम सौंपें और उससे मैं आपका सन्तोष करा सकूँ, तो उसके बाद आप यदि कुछ दें तो वह लिया जा सकता है।' राजाने कहा—'पण्डितजी! बहुत अच्छा। आप सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण हैं। मैं आपसे गीताका रहस्य सुनना चाहता हूँ। मुझे आप कृपापूर्वक गीताके बारहवें अध्यायके सोलहवें श्लोकका भावसहित स्पष्ट अर्थ समझाइये।'

पण्डितजीने पहले श्लोक पढ़ा, फिर उसका शब्दार्थ बतलाया—

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

'जो पुरुष आकांक्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है, वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।'

तदनन्तर वे श्लोकका भावार्थ इस प्रकार बतलाने लगे—

जिसे किसी भी प्रकारकी इच्छा, स्पृहा और कामना न हो, जो आप्तकाम हो एवं जिसे किसी बातकी भी परवा न हो, उसे 'अनपेक्ष' कहते हैं।

जिसका अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र हो, जिसका बाहरका व्यवहार भी उद्वेगरहित, पवित्र और न्याययुक्त हो; जिसके दर्शन, भाषण, स्पर्श और वार्तालापसे ही लोग पवित्र हो जायँ, वह 'शुचि' है।

जिस महान् कार्यके लिये मनुष्य-शरीर मिला है, उसे प्राप्त कर लेना अर्थात् भगवान्‌को प्राप्त कर लेना ही मनुष्यकी यथार्थ 'दक्षता' है; जो अपना काम बना लेता है, वही 'दक्ष' कहलाता है।

जो गवाही देते समय और न्याय या पंचायत करते समय कुटुम्बी, मित्र, बन्धु, आदिकी दृष्टिसे या राग, द्वेष,

लोभ, मोह एवं भय आदिके वश होकर किसीका भी पक्षपात नहीं करता—सदा सर्वथा पक्षपातरहित रहता है, उसे 'उदासीन' कहते हैं।

किसी भी प्रकारके भारी-से-भारी दु:ख अथवा दु:खके हेतु प्राप्त होनेपर भी जो दुखी नहीं होता अर्थात् जिसके अन्त:करणमें कभी किसी तरहका विषाद, दु:ख या शोक नहीं होता, वही 'गतव्यथ' है।

जो बाहर-भीतरके समस्त कर्मोंका त्यागकर केवल प्रारब्धपर ही निर्भर रहता है, अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये कुछ भी कर्म नहीं करता; अपने-आप जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहता है तथा प्रारब्धवश होनेवाली क्रियाओंमें जिसके कर्तापनका अभिमान नहीं है, ऐसे बाहर और भीतरके त्यागीको 'सर्वारम्भपरित्यागी' कहते हैं।

पण्डितजीके उपर्युक्त भावार्थ बतला चुकनेपर राजाने नम्रतासे कहा—'महाराजजी! आपने बड़ा सुन्दर अर्थ किया। आपका कथन सर्वथा युक्तियुक्त और शास्त्र-संगत है। तथापि मेरा ऐसा अनुमान है कि श्लोकोंका बहुत सुन्दर अर्थ करनेपर भी आप अभी इसके रहस्यसे अनभिज्ञ हैं।' पण्डितजी झुँझलाकर बोले—'रहस्य न जानता होता तो भावसहित अर्थ कैसे बतला सकता? मुझे गीताकी बावन टीकाएँ कण्ठस्थ हैं। इसके अतिरिक्त कोई विशेष रहस्य हो और उसे आप जानते हों तो आप ही बतलाइये।'

राजाने इसका उत्तर न देकर बड़ी विनम्र वाणीमें कहा—'पण्डितजी! मुझे आपकी शास्त्रसम्मत सुन्दर व्याख्यासे बड़ा सन्तोष हुआ है; मैं आपका बहुत आभारी हूँ। अत: मेरी दी हुई भेंट आप कृपया स्वीकार कीजिये।'

पण्डितजीने कहा—'राजन्! जब आप मेरे लिये यह कहते हैं कि मैं रहस्यसे अनभिज्ञ हूँ, तब सन्तोषकी बात कहाँ रही? यह तो कहनेभरका सन्तोष है। आपको जबतक वास्तवमें सन्तोष न हो जाय, तबतक आपसे कुछ भी लेना नहीं चाहता।'

राजाके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी पण्डितजीने भेंट स्वीकार नहीं की और वे घर लौट आये। उधर राजाने एक विश्वासपात्र गुप्तचरको बुलाकर कहा—'ये ब्राह्मणदेवता बड़े त्यागी, सदाचारी और स्वाभिमानी विद्वान् हैं। तुम इनके पीछे जाकर देखो, घरपर इनका कैसा-क्या व्यवहार और वार्तालाप होता है और फिर उसकी सूचना मुझे दो।' राजाका आदेश पाकर गुप्तचर उनके पीछे हो लिया और उनका सब व्यवहार-वार्तालाप देखता रहा।

पण्डितजीने घर लौटकर पत्नीके पूछनेपर राजसभाकी सारी कथा आद्योपान्त उसे सुना दी। पत्नीने विनय और प्रेमसे कहा—'स्वामिन्! राजाने जो कुछ कहा वह तो उचित ही मालूम होता है। आपको नाराज नहीं होना चाहिये था।'

पण्डितजी—(कुछ क्रोधावेशमें आकर तथा व्यथित-से होकर) वाह! तुम भी राजाकी ही बातका समर्थन करती हो!

पत्नी—नाथ! आप ही तो कहा करते हैं कि न्याययुक्त बातका समर्थन करना चाहिये।

पण्डितजी—(कुछ और भी उत्तेजनासे, परंतु उसे दबाते हुए) क्या राजाका यह कहना न्याययुक्त है कि मेरी व्याख्या तो सुन्दर है, पर मैं इसके रहस्यको नहीं समझता?

पत्नी—नाथ! आप क्षमा करें। राजाकी बात तो बहुत ठीक है। किसी श्लोककी व्याख्या करना सहज है, पर उसका यथार्थ रहस्य जानना बहुत ही दुर्लभ है।

पण्डितजी—कैसे?

पत्नी—जैसे ग्रामोफोनपर जो चूड़ी चढ़ा दी जाती है, वह वही गाना गा देता है, पर उसके रहस्यको वह थोड़े ही समझता है।

पण्डितजी—तो क्या मैं ग्रामोफोनकी तरह हूँ?

पत्नी—जो पुरुष दूसरोंको उपदेश-आदेश तो बड़ा सुन्दर करता हो, किंतु स्वयं उसमें वे बातें चरितार्थ न होती हों तो आप ही बतलाइये, ग्रामोफोनमें और उसमें क्या अन्तर है? राजाके पूछनेपर आपने श्लोककी जो व्याख्या की, क्या वे सारी बातें आपमें चरितार्थ होती हैं?

पण्डितजी—क्यों नहीं? कौन-सी बात मुझमें नहीं है?

पत्नी—आप शान्तिसे मेरा निवेदन सुनिये। मेरी प्रार्थना है—आप उस श्लोकके प्रत्येक पदका अर्थ पुनः मुझे बतलाइये। 'अनपेक्ष' का क्या भाव है?

पण्डितजी—जिसे किसी भी प्रकारकी इच्छा, स्पृहा और कामना न हो, जो आप्तकाम हो एवं जिसे किसी बातकी परवाह न हो, उसे 'अनपेक्ष' कहते हैं।

पत्नी—क्या आप ऐसे हैं?

पण्डितजी—क्यों नहीं? मुझे तो कोई भी इच्छा, स्पृहा और कामना नहीं है। मैं तो तुम्हारे ही अनुरोध करनेपर राजाके पास गया था। और राजाके अनुनय-विनय करनेपर भी मैंने उनसे कुछ भी नहीं लिया।

पत्नी—बहुत अच्छा! सत्य है, आप मेरे ही आग्रहसे गये थे। यह आपकी मुझपर दया है। अच्छा 'शुचि' का क्या अभिप्राय है?

पण्डितजी—जिसका अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र हो, जिसका बाहरका व्यवहार भी उद्वेगरहित, पवित्र और न्याययुक्त हो; जिसके दर्शन, भाषण, स्पर्श और वार्तालापसे ही लोग पवित्र हो जायँ, वह 'शुचि' है।

पत्नी—क्या आप बाहर-भीतरसे इस प्रकार शुद्ध हैं? क्या आपके दर्शन, भाषण, स्पर्श और वार्तालाप करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है? क्या आपके अन्तःकरणमें कोई विकार नहीं होता? क्या आपका बाहरका व्यवहार उद्वेगरहित, न्याययुक्त और पवित्र है? यदि ऐसा है तो फिर आपके मनमें क्रोध तथा उद्वेग क्यों हुआ और राजासे आपने अहंकारके वचन क्यों कहे?

पण्डितजी—(विनम्र होकर) ठीक है, इस गुणकी तो मुझमें कमी है।

पत्नी—अच्छा, 'दक्ष' का आपने क्या भाव बतलाया?

पण्डितजी—जिस महान् कार्यके लिये मनुष्य-शरीर मिला है, उसे प्राप्त कर लेना अर्थात् भगवान्‌को प्राप्त कर लेना ही मनुष्यकी यथार्थ दक्षता है, जो अपना काम बना लेता है, वही दक्ष कहलाता है।

पत्नी—तो क्या आप जिस महान् कार्यके लिये संसारमें आये थे, उसे पूरा कर चुके? क्या आपने परमपदको प्राप्त कर लिया? नहीं तो, फिर राजाका कहना उचित ही है।

पण्डितजी—तुम्हारा कथन सत्य है। मुझमें यह गुण भी नहीं है।

पत्नी—'उदासीन' पदका क्या अभिप्राय है?

पण्डितजी—जो गवाही देते समय, न्याय या पंचायत करते समय कुटुम्बी, मित्र, बन्धु आदिकी दृष्टिसे या राग, द्वेष, लोभ, मोह एवं भय आदिके वश होकर किसीका भी पक्षपात नहीं करता—सदा-सर्वथा पक्षपात-रहित रहता है, उसे 'उदासीन' कहते हैं।

पत्नी—क्या आप पक्षपातरहित हैं? क्या आपने राजाके सम्मुख अपने पक्षका समर्थन नहीं किया? क्या आपने राजाके इस कथनपर कि आप श्लोकके रहस्यको नहीं समझते, गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया? नहीं तो, फिर राजाका कहना कैसे उचित नहीं है?

पण्डितजी—(सरल और शुद्ध हृदयसे अपनी कमीको विनम्र भावसे स्वीकार करते हुए) तुम सच कहती हो। सचमुच तुमने आज मेरी आँखें खोल दीं।

पक्षपातरहित होनेका तो मुझमें बड़ा अभाव है। कहीं वाद-विवाद होता है तो मैं अपने पक्षको दुर्बल जानकर भी अपने पक्षके दुराग्रहको नहीं छोड़ता।

पत्नी—अच्छा 'गतव्यथ' का आप क्या अर्थ करते हैं?

पण्डितजी—किसी भी प्रकारके भारी-से-भारी दुःख अथवा दुःखके हेतु प्राप्त होनेपर भी जो दुखी नहीं होता अर्थात् जिसके अन्तःकरणमें कभी किसी तरहका विषाद, दुःख या शोक नहीं होता, वही 'गतव्यथ' है।

पत्नी—क्या आपके चित्तमें कोई व्यथा नहीं होती? यदि नहीं होती तो फिर राजाके वचनोंपर और मेरे समर्थन करनेपर आपको इतना उद्वेग और व्यथा क्यों होनी चाहिये?

पण्डितजी—तुम्हारा कहना सत्य है। यह भाव मुझमें बिलकुल नहीं है। मनके विपरीत होनेपर प्रत्येक

पदपर केवल व्यथा ही नहीं भय, उद्वेग, ईर्ष्या, शोक आदि विकार भी मुझमें पर्याप्त मात्रामें दिखायी पड़ते हैं।

पत्नी—अच्छा, 'सर्वारम्भपरित्यागी' से आप क्या समझते हैं?

पण्डितजी—जो बाहर-भीतरके समस्त कर्मोंके त्यागकर केवल प्रारब्धपर ही निर्भर रहता है, अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये कुछ भी कर्म नहीं करता, अपने-आप जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहता है तथा प्रारब्धवश होनेवाली क्रियाओंमें जिसके कर्तापनका अभिमान नहीं है, ऐसे बाहर और भीतरके त्यागीको 'सर्वारम्भपरित्यागी' कहते हैं।

पत्नी—बहुत सुन्दर व्याख्या है, परंतु बतलाइये क्या आपने बाहर और भीतरसे सब कर्मोंका त्याग कर दिया? और क्या आपके अन्तःकरणमें कोई सांसारिक संकल्प नहीं होता? यदि नहीं, तो फिर आपको इतना अहंकार क्यों होना चाहिये? बाहरसे तो आप सब कर्म करते ही हैं।

पण्डितजी—सत्य है, यह बात तो मुझमें बिलकुल ही नहीं घटती। मैं अपनी सारी त्रुटियोंको समझ गया, सचमुच मैं अबतक अर्थ ही करता था। रहस्यसे अनभिज्ञ था। अब कुछ-कुछ समझमें आ रहा है। अतः तुम अनुमति दो, अब मैं बाहर और भीतरसे सब कुछ त्यागकर सच्चा संन्यासी बनने जाता हूँ। यों कह पण्डितजी सब कुछ छोड़कर घरसे चलने लगे।

पत्नीने प्रार्थना की—महाराजजी! मैं भी आपके साथ ही आपका अनुगमन करना चाहती हूँ।

पण्डितजी—मैं अपने साथ किसी झंझटको नहीं रखना चाहता। फिर स्त्रीको तो रखूँ ही कैसे?

पत्नी—नाथ! मुझे आप झंझट न समझिये। मैं आपके साधनमें कोई विघ्न नहीं करूँगी। मैंने जो आपको राजाके पास भेजा था, सो धनके लिये नहीं। धनको तो मैंने एक निमित्त बनाया था। मेरा उद्देश्य तो यही था कि आप जीवनके मुख्य लक्ष्यको प्राप्त कर लें। राजा तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष हैं। आप धर्मज्ञ, सदाचारी, त्यागी, सन्तोषी, विद्वान् तो हैं ही, तत्त्वज्ञ राजाके संग-प्रभावसे आपको परमात्माकी प्राप्ति भी हो जायगी—इसी लक्ष्यसे मैंने आपको वहाँ भेजा था।

अब यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी आपके साथ चलना चाहती हूँ।

पण्डितजी—(कृतज्ञताके साथ) मैं अब इस बातको समझ गया। सचमुच तुमसे कोई हानि नहीं होगी। तुम्हीं तो मेरा सच्चा उपकार करनेवाली परम सुहृद् हो। वस्तुतः सच्चे सुहृद् वही हैं, जो अपने प्रिय सम्बन्धीकी परमात्माकी प्राप्तिमें सहायता करते हैं। चलो, तुम तो वहाँ भी परमात्माकी प्राप्तिमें मेरी सहायता ही करोगी।

तदनन्तर वे दोनों सब कुछ त्यागकर घरसे निकल गये।

इधर, गुप्तचरने जो उन दोनोंकी परस्पर बातचीत सुनी और जो घटना देखी, वह सब राजाके पास जाकर ज्यों-की-त्यों कह दी। राजाने अपने राज्य, कोष आदि सब तो पहले ही अपने पुत्रको सँभला दिये थे, अब गुप्तचरकी बात सुनकर वे भी राज्य छोड़कर चल दिये। उन्हें रास्तेमें सम्मुख आते हुए ब्राह्मणदम्पती मिले। राजाने बड़े उल्लासके साथ उनसे कहा—'पण्डितजी महाराज! अब आप गीताके उस श्लोकका रहस्य समझे।'

पण्डितजीने नम्रताभरे शब्दोंमें उत्तर दिया—अभी समझा नहीं, समझनेके लिये जा रहा हूँ।

राजा भी उनके साथ ही चल पड़े। तीनों एक एकान्त पवित्र देशमें जाकर निवास करने लगे। राजा और ब्राह्मणपत्नी तो तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त महात्मा थे ही। उनके संगके प्रभावसे पण्डितजी भी परमात्माको प्राप्त हो गये।

[यह कहानी गीताके बारहवें अध्यायके १६ वें श्लोकका निवृत्तिपरक अर्थ करके बतलायी गयी है। इसका जो प्रवृत्तिपरक अर्थ होता है, वह इससे भिन्न है।]

क्या ईश्वर-साक्षात्कार भी एक वैज्ञानिक सत्य नहीं ?

(पं० श्रीधर्मदेवजी शास्त्री, दर्शनकेसरी, पंचतीर्थ)

ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअच्युतमुनिजी महाराज एक तत्त्वदर्शी और पहुँचे हुए सन्त थे। बनारसमें आजसे दस वर्ष पूर्व मुझे जब उनके प्रथम साक्षात्कारका सुअवसर मिला, तब मैंने उनसे कुछ प्रश्न किये थे, जिनमेंसे एक प्रश्नकी चर्चा मैं प्रस्तुत लेखमें करूँगा।

'महाराज! आप विद्वान्, भक्त और ज्ञानी हैं; कृपया मुझे यह बताइये कि आपको ईश्वरका साक्षात्कार हुआ है? यदि आप भी अबतक ईश्वरका साक्षात्कार नहीं कर सके तो फिर मेरे-जैसे व्यक्तिको तो उसकी प्राप्ति कैसे होगी? कृपया साफ-साफ बताइये—मैं यह जानना चाहता हूँ कि ईश्वरका साक्षात्कार किसीको होता भी है या यह केवल मनकी कल्पनामात्र है?' मैंने पूछा।

'तुमने अच्छा प्रश्न किया है; मैं तुम्हें स्पष्टरूपसे कहना चाहता हूँ कि मुझे ईश्वरका साक्षात्कार होता है और सदा सर्वत्र उसीका दर्शन होता है।'

'लेकिन महाराज! यह कैसे पता चले कि आपका यह ज्ञान यथार्थ है, भ्रम नहीं है?'

'मैं स्वयं भी तुम्हारी-जैसी स्थितिमेंसे गुज़रा हूँ, इसलिये तुम्हारी मनोदशाको मैं समझ सकता हूँ, परंतु अब मैं बिना सन्देह कह सकता हूँ कि मुझे ईश्वरका दर्शन वैसे ही हो रहा है, जैसे मेरे सम्मुख बैठे हुए तुम्हारा और सामने बहती गंगाका। अपने इस ज्ञानकी यथार्थतामें मुझे तनिक भी भ्रम नहीं है। मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरा इन्द्रियजन्य ज्ञान धोखा दे सकता है और देता है, परंतु ईश्वर-साक्षात्कार-विषयिणी प्रतीतिमें तो मुझे धोखेका आभास भी नहीं मिलता।'

'परंतु महाराज! उपनिषदोंमें तो आया है—'**अविज्ञातं विजानताम्**' (जो यह कहते हैं कि ईश्वरको मैं जानता हूँ, वे नहीं जानते।)'

'परंतु भाई! उपनिषद्के इस वचनको जानता हुआ भी कहता हूँ कि मैं ईश्वरको देख रहा हूँ। जब मुझे ईश्वरका दर्शन हो रहा है, तब मैं झूठ क्योंकर बोल सकता हूँ?'

'क्या महाराज! मैं भी उस परात्पर शक्तिका दर्शन कर सकता हूँ?'

'अवश्य; लोग तो ईश्वर-साक्षात्कारको बहुत कठिन बताते हैं, परंतु मेरा अनुभव भिन्न है। सांसारिक विषयोंकी प्राप्तिसे ईश्वर-प्राप्ति आसान है, परंतु मनुष्यको जितनी चिन्ता विषय-प्राप्तिकी है, उतनी इच्छा ईश्वर-प्राप्तिकी नहीं है; यदि उत्कट इच्छा हो जाय तो ईश्वर-साक्षात्कार अविलम्ब हो सकता है। वस्तुतः मनुष्य ईश्वरका साक्षात्कार करना नहीं चाहता, परंतु कहता यह है कि ईश्वर-साक्षात्कार हो नहीं सकता। यह उसकी आत्मविडम्बना है।'

'महाराज! थोड़ा इस विषयको आज-कलकी वैज्ञानिक भाषामें स्पष्ट कीजिये।' मैंने विनयपूर्वक कहा।

'ईश्वर-साक्षात्कार भी एक वैज्ञानिक सत्य है। जिस प्रकार कोई वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें बैठकर एक नियत शास्त्रीय रीतिसे तथा बाह्य साधनोंसे वैज्ञानिक सत्योंका अनुसन्धान करता है, उसी प्रकार एक आध्यात्मिक व्यक्ति भी अध्यात्मशास्त्रकी नियत रीति और शास्त्रीय विधिका अनुसरणकर मात्र आन्तर साधनोंसे उस अनाद्यनन्त सत्यका साक्षात्कार कर सकता है। जिस प्रकार न्यूटनकी बातपर विश्वास करके लोग पृथ्वीके आकर्षण-सिद्धान्तको सिद्धवत् मानकर व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर सहस्रों ऋषियोंके अनुभवके आधारपर आज भी यदि जनता ईश्वरपर विश्वास करके चलती है और कर्ममें प्रवृत्त तथा विकर्मसे निवृत्त होती है तो इसमें क्या आश्चर्य है? और फिर जैसे किसी वैज्ञानिक अन्वेषणके बाद जाने गये सत्यको झुठलानेका अधिकार भी उसी व्यक्तिको है, जो एक सर्वसम्मत वैज्ञानिक पद्धतिसे प्रयोग करके उसके विरोधी सत्यका पता लगाकर पूर्व अनुभवियोंको विश्वास दिला देता है, उसी प्रकार अध्यात्मसम्बन्धी आजतकके अनुभवोंको झुठलानेका भी वही अधिकारी हो सकता है, जो अध्यात्मशास्त्रकी एक वैज्ञानिक पद्धतिसे प्रयोग करके कोई नयी बात कहता है।'

स्वामी श्रीअच्युतमुनिजी महाराजने जो शब्द कहे

थे, अक्षरश: वे ही शब्द मैंने नहीं लिखे। लिखना है भी कठिन; परंतु इतना तो मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि स्वामीजीके कथनका तात्पर्य यही था।

× × ×

पिछले आन्दोलनमें जब मुझे देहरादून-जेलमें छ: मास रहनेका अवसर आया, तब वहाँ यह प्रश्न फिर उग्ररूपसे मेरे सामने आया। कुछ कम्यूनिस्ट और सोशलिस्ट भाई भी हमारे साथ थे। कम्यूनिज़्ममें ईश्वर और धर्मका कोई स्थान नहीं। वह मात्र आधिभौतिक वैज्ञानिक पद्धतिसे विचार करना सिखाता है। हमलोगोंकी—जो धार्मिक दृष्टिकोण रखते हैं—सभी विषयोंको आध्यात्मिक दृष्टिसे विचारनेकी आदत है; इसलिये प्राय: प्रत्येक विचारणीय विषयपर कुछ दूर तो हम दोनोंकी विचार-शैली एक समान चलती; फिर आगे जाकर हम दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होते। मुझे यहाँ कम्यूनिज़्मके गुण-दोषोंपर विचार नहीं करना है, न तो प्रस्तुत लेखके साथ इस विषयका सम्बन्ध है। मैं तो केवल यहाँ यह बताना चाहता हूँ कि आध्यात्मिक सत्यको जाननेकी भी एक वैज्ञानिक पद्धति है।

मैंने अपने कम्यूनिस्ट साथियोंको जो बात कही, उसका निर्देशभर करना चाहता हूँ। मैंने कहा—'जिस प्रकार अन्य सब भौतिक विषयोंके अलग-अलग शास्त्र हैं, उसी प्रकार अध्यात्मका भी एक सुव्यवस्थित शास्त्र है। आजकल युद्धमें हिंसाके साधनोंसे विजय प्राप्त करनेका सिद्धान्त यूरोपका माना हुआ है और उसके लिये एक शास्त्र है, जिसके अनुसार सैनिकोंको बाकायदा शिक्षा दी जाती है, आक्रमण करने और आक्रमणसे बचने तथा प्रत्याक्रमण करनेका प्रकार सिखाया जाता है। यदि कोई राष्ट्र इस प्रकारके साधनोंका ठीक-ठीक शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त न करके युद्ध करे और वह पराजित हो जाय तो इससे उस शास्त्रको झूठा कहना ग़लती होगी। इसी प्रकार अध्यात्मका भी एक शास्त्र है। जो व्यक्ति अध्यात्मशास्त्रमें प्रतिपादित पद्धतिसे मन, शरीर और बुद्धिका विकास करेगा, वह अध्यात्मसम्बन्धी सत्यका दर्शन कर सकेगा। जैसे आजकल संसारमें प्राय: लोग आधिभौतिक ढंगसे ही विचार करनेके अभ्यस्त हो गये हैं, उसी प्रकार कभी समय था जब संसारमें और विशेषकर भारतवर्षमें जनताकी एक बड़ी संख्या आध्यात्मिक दृष्टिसे व्यक्ति, समाज और राष्ट्रका विकास करती थी और हमारा विश्वास है कि संसारके कल्याणका वही एक महामार्ग है।'

मेरे इस कथनको सुनकर एक भाईने कहा—'ईश्वर और धर्म तथा परलोकपर विश्वास करना मनुष्यके लिये तभी ठीक था, जब मनुष्य-समाजने प्रकृतिपर विजय नहीं प्राप्त की थी और वह प्रकृतिकी विविधताओंको देखकर डरता था; अब तो मनुष्य प्रकृतिका स्वामी बन गया है।'

'अब मनुष्य प्रकृतिका स्वामी बन गया है, यह आप कहते हैं; मैं तो यह कहता हूँ—मनुष्यने प्रकृति-दासीको अपनी स्वामिनी बना लिया है। जितना प्रयत्न मनुष्यने प्रकृति-दर्शनके लिये किया है, उसका शतांश भी यदि वह आत्म-दर्शनके लिये करता तो आज मानव-समाजका रूप कुछ और ही होता। आजका मनुष्य देश और कालकी दूरीको जीतनेमें समर्थ हो सका है; परंतु उसने एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यसे इतना अधिक दूर कर दिया है कि प्रति बीस वर्षोंमें विश्व-युद्धकी अवस्था उपस्थित हो जाती है। वास्तवमें मनुष्यकी सफलता प्रकृति-विजयी होनेकी अपेक्षा मनोविजयी होनेमें अधिक है। प्रकृतिको उपयोगी बनानेकी अपेक्षा प्रकृति-निर्माताका प्रत्यक्ष करना अधिक अच्छा है और यह कार्य धर्मके बिना नहीं हो सकता।'

'लेकिन धार्मिक व्यक्ति सदा प्रतिगामी और अन्याय-अत्याचारके समर्थक होते हैं—रूसमें ऐसा ही हुआ था।'

'यह आपका भ्रम है। धर्मात्मा सदा पतितों और असहायोंका ही साथ देगा। रूसकी बात तो मैं नहीं कहता। हमारे देशमें आज साम्प्रदायिक झगड़े करानेवाले वे ही व्यक्ति हैं, जो धर्मसे वस्तुत: अपरिचित हैं। एक बात और भी है, कैसी भी अच्छी चीज बुरे आदमियोंके हाथोंमें जाकर अच्छी नहीं रहती। धर्म इस नियमका अपवाद नहीं है। इसमें धर्मका दोष नहीं, **'सैषा पुरुषगर्हा न शास्त्रगर्हा'**—यह पुरुष-निन्दा है, शास्त्र-निन्दा नहीं।'

विजय निश्चित है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

साधनाके क्षेत्रमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादि शत्रुओंसे हमारा जो संग्राम है, उसमें हमारी विजय निश्चित है; कारण कि साधनामें सहायक प्रभु हर समय, हर अवस्थामें हमारे साथ हैं। जहाँ अन्त:स्थ परमात्माकी अपार शक्तिमें विश्वास होता है, वहाँ काम-क्रोधादि शत्रु स्वयं दब जाते हैं। फिर वे हमारे सामने सिर भी नहीं उठा सकते। आचार्य शंकर, बुद्ध आदि महापुरुषोंके भीतर जो शक्ति थी, वही शक्ति हमारे भीतर भी है। यदि हम उसे ठीक-ठीक पहचानें और उसकी प्रेरणासे ही अपने कर्मोंका संचालन करें तो सफलता निश्चित है। निरन्तर आत्मनिरीक्षण और साधन करते रहनेसे इन भयंकर कहे जानेवाले शत्रुओंको फिर कोई ढूँढ़े भी नहीं पा सकता। इनकी क्या सामर्थ्य है कि ये फिर हमारी शान्तिको भंग कर सकें!

साधकको निरन्तर उत्साह रखना चाहिये, भगवान्‌के पथमें चलनेवालेको कभी निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। वह निराश हो ही क्यों? अपने लक्ष्यकी साधनाकी ओर जिस क्षण उसने पग बढ़ाया कि प्रभु उसके साथ हुए। जब 'सर्वलोकमहेश्वर' हमें हमारे सुहृद्‌के रूपमें सहारा दिये हुए हैं तो फिर हिम्मत क्यों हारना है? मोहसे कातर अर्जुन भगवान्‌से पूछता है—'प्रभो! अनिच्छित, बलपूर्वक लगाये हुएके सदृश पुरुष किससे प्रेरा हुआ पापका आचरण करता है?' इस प्रकार सरल बालककी भाँति अर्जुनके पूछनेपर भगवान् कहते हैं—'अर्जुन! ये काम और क्रोध आसक्ति हैं—ये महाअशन अर्थात् अनन्त भोजनोंसे भी तृप्त नहीं होनेवाले हैं—ये मनुष्यके बहुत बड़े शत्रु हैं।' ऐसा कहते हुए भगवान् अर्जुनको ललकारते हैं—'**जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।**' 'हे महाबाहो! अपनी शक्तिको समझकर इस दुर्जय कामरूप शत्रुको मार।'

वह शक्ति क्या है? वह है भगवान्‌की शक्ति। वह भागवती शक्ति हम सभीमें हैं, जिसे यदि हम अज्ञान और संशयका आवरण हटाकर पहचान लें और उसका बल तथा आश्रय ठीक-ठीक प्राप्त कर लें तो संसारमें इस अजेय दीखनेवाले कामरूपी शत्रुका सदाके लिये उन्मूलन किया जा सकता है। साधनाके क्षेत्रमें ये मायिक शक्तियाँ (काम, क्रोध, लोभ, मोहादि) ही बाधक हैं, जिनसे साधक अपनेको पहलेसे ही हारा हुआ समझता है। परंतु आत्माकी अपार शक्तियोंको स्वीकार कर लेनेके बाद साधना-क्रममें उसे किसी भी विघ्न-बाधासे परास्त होनेका भय नहीं है। जहाँ आत्माके बलका आश्रय है, वहाँ सभी विरोधी शक्तियाँ स्वत: परास्त हो जाती हैं। इसी भगवदीय शक्तिका आश्रय लेनेपर तथा प्रभुपदकी शपथ लेकर ही लक्ष्मणजीने कहा था—

'तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।'

श्रीलक्ष्मणजीने जब इस बलका आश्रय लिया तभी तो ***'डगमगानि महि दिग्गज डोले'***—पृथ्वी डगमगाने लगी थी। हनुमान्‌जीको जब इस शक्तिका स्मरण होता था तभी वे अतिमानवीय, अलौकिक कार्य सम्पन्न कर डालते थे। जब जाम्बवन्तने इस शक्तिका उन्हें स्मरण दिलाया तभी तो हनुमान्‌जी सुमेरुपर्वतके समान आकारमें ***'कनक भूधराकार सरीरा'*** प्रकट हुए। जहाँ इस अपार दैवी बलका हमने आश्रय लिया, वहीं हमें सभी प्रकारके बल तथा शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

काम-क्रोध-मोह आदि हमें तभीतक सताते हैं जबतक हम भागवती शक्तिका आश्रय नहीं लेते। गीतामें भगवान्‌ने कई स्थलोंपर और कई बार घोषणा की है कि 'निरन्तर मुझमें मन लगा लो, सारे विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयोंको लाँघ जाओगे।'

मच्चित्त: सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८।५८)

एकमात्र भगवान्‌का आश्रय ले लेनेपर फिर पाप-तापकी भावना ही क्यों आयेगी? जब प्रभुकी अनन्त शक्ति निरन्तर, हर अवस्थामें साथ है तो हमें फिर डर किसका और कैसा? हमारी सफलता निश्चित है, काम-क्रोधादि विकारोंपर हमारी विजय निश्चित है।

हम पूर्ण सफल होंगे या नहीं, हमारा कल्याण होगा या नहीं, प्रभुके दर्शन होंगे अथवा नहीं, इसमें हम सन्देह ही क्यों करें?

गीता तो उद्घोष करती है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

(१८।७८)

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण और धनुर्धर अर्जुन हैं, वहाँ अवश्य ही विजय है। संसारके परम आश्रय भगवान् नारायणका बल ले करके नर यदि अपने कर्तव्यकर्मोंमें प्रवृत्त हो तो उसकी विजय सुनिश्चित है, इसमें सन्देह नहीं है। वे नारायण हर समय हमारे साथ हैं तथा हमेशा हमारे योगक्षेमके लिये मार्गदर्शन करनेहेतु सदा तत्पर रहते हैं। आवश्यकता है हमें धनुर्धर बननेकी—चतुर्दिक् दीखनेवाले इन विकाररूप प्रबल शत्रुओंको परास्त करनेके लिये भगवत्प्रेरणाका अनुभव करते हुए अपने हाथमें शस्त्र-अस्त्र लेनेकी। हमें सदैव अर्जुनकी भाँति '**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' तथा '**करिष्ये वचनं तव**'—'मैं आपका शिष्य हूँ, मैं आपकी एक-एक बात मानूँगा।' इसीकी टेर लगानी चाहिये। फिर तो जीत हमारी है। हम सभी नर हैं—वे ही एक नारायण हैं—हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं, संशय छोड़कर हमें यही दृढ़ निश्चय करना है। भगवान्‌के वचनोंका विश्वास करके हम उनके '**योगक्षेमं वहाम्यहम्**' आदि वचनोंमें अखण्ड आस्था रखें। तभी निश्चल, निर्द्वन्द्व और अलमस्त होकर हम भगवत्पथमें चल सकेंगे। भगवान्‌की तो यह उद्घोषणा ही है कि महापापी भी यदि अनन्यभावसे मुझे भजता है तो वह तत्काल (धर्ममय स्वरूपवाला) धर्मात्मा हो जाता है। यदि वह एक बार भी आर्त्तभावसे प्रभुको पुकारे और एकमात्र उनकी शरणकी याचना करे तो उसी क्षण उसके सभी पाप भस्म हो जाते हैं और प्रभु उसे अपनी गोदमें उठा लेते हैं। उस परम प्रभुकी हम सन्तान हैं, परम पिता सदा ही यह चाहते हैं कि हम पुण्यात्मा बनें, सत्पथपर चलें—उनके सच्चे पुत्र और भक्त कहलायें। कभी उनके नामपर कलंक न लगने दें। इस अवस्थामें वे हमें सत्पथमें चलते रहनेके लिये सदा सहारा और प्रोत्साहन देते रहते हैं, देनेके लिये सदैव तत्पर रहते हैं। प्रभु तो चाहते ही हैं कि उनकी सभी सन्तान 'साधु'—सच्चे साधु बनें। जहाँ हम आर्तभावसे ऐसे अशरणशरण प्रभुकी शरणमें गये कि वहीं हमारे जन्म-जन्मान्तरोंके पाप-ताप नष्ट हो जायँगे। जब हमारा जीवात्मा प्रभुमय हो जायगा, तब फिर ये इन्द्रियोंमें बसनेवाले शत्रु कहाँ रहेंगे? हरिकी गोदमें जाना ही शाश्वत शान्ति, सनातन शान्ति प्राप्त करनेका एकमात्र साधन है। हम सभी भगवान् श्रीहरिकी वात्सल्यमयी विशाल गोदमें हैं। आवश्यकता है आँखें खोलकर देखनेकी, हृदय खोलकर अनुभव करनेकी—'**न मे भक्तः प्रणश्यति**'—मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। भगवान्‌की अतिशय प्रेम और वात्सल्यमयी यह घोषणा अविश्वसनीय कैसे हो सकती है? यही तो प्रभुकी आन-बान है, अधमोद्धार ही तो भगवान्‌का विरद है। फिर चाहे जैसे भी हम हों, चिन्ता क्या?

खूब धैर्य, उत्साह, प्रेम और मस्तीके साथ हमें निरन्तर भगवान्‌के पथमें चलना चाहिये। उनकी कृपाकी अनवरत वर्षा हम सबपर हो रही है। उस कृपासे गूँगे भी वाचाल हो जाते हैं, लँगड़ा मनुष्य भी दुर्गम पहाड़ लाँघ जाता है। उनकी कृपासे सारे असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। भगवान्‌की यह दया तो हमें सहजरूपसे ही प्राप्त है। मनुष्यमात्रपर उनकी यह कितनी बड़ी दया है कि उनके स्मरणमात्रसे मनुष्य आवागमनके चक्करसे सदाके लिये छूट जाता है। '**यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्। विमुच्यते**……।' यह भगवान् हरिकी हमपर कैसी आत्यन्तिक दया है। कैसी करुणा है। हमारे लिये कितना कल्याणकारी है, यह उनका करुणापूर्ण वात्सल्य!

यदि हम मुर्देकी भाँति पड़े रहें कि अभी हमसे क्या होगा? तो यह दुर्लभ मनुष्य-जीवन यों ही नष्ट हो जायगा। इस मनुष्य-जीवनको पाकर भी यदि हम न चेते और अपना कल्याण न कर पाये तो फिर क्या किया? येन-केन-प्रकारेण जीवनके दिन बिता देना आत्माका महान् अपमान करना है। इसके लिये हमें भारी पश्चात्ताप करना होगा। मनमें ऐसी दीनता कभी न आने दें कि मेरे किये क्या होगा? यह इस तमोगुणी शरीरका और उसकी बुद्धिका परमात्मामें विश्वासके अभावका लक्षण है। जिस हृदयमें भगवान्‌की भक्ति और उसकी अपार अहैतुकी दयामें विश्वास है, वहाँ नित्य-निरन्तर प्रकाश, ज्ञान, आनन्द और उत्साह उमड़ता ही रहता है। वहाँ चित्तकी कली-कली खिल जाती है। उस स्थितिमें प्रतिपल एक अपार आनन्दका महासमुद्र लहरें लेता रहता है। वहाँ आनन्द और उत्फुल्लताके सिवा कुछ है ही नहीं। विषाद, अवसाद आदि तो अविश्वासके लक्षण हैं—यह तो तमोगुणकी पिशाचलीला है। प्रमाद, आलस्य और निद्रा—हाथ-पर-हाथ धरे रहना—ऐसे विचार कि हमारे किये क्या

होगा, हमारे भाग्यमें तो विधाताने दु:ख, विपत्ति ही लिखे हैं, महातमोगुणी भाव हैं। अत: समय रहते सजग होकर परमात्माके बल और प्रकाशका आश्रय लेकर हमें अपने इन सच्चे शत्रुओंका संहार करना चाहिये। भगवद्भक्त तो कभी निराश होगा ही नहीं; घोर निराशा—अमावस्याकी घनी अँधियारीमें भी उसका हृदय प्रभुके चरणोंमें ही लिपटा रहेगा और वह समझेगा कि आज ही सब विपदाओंकी इति है। अब तो शुक्लपक्ष आ ही रहा है, इस अमावस्याके तमस्तोमके उस पारसे शुक्लपक्ष झाँकता प्रतीत होगा। उत्साह कभी भंग नहीं होना चाहिये। किंतु विश्वास न होनेपर तो विषाद होगा ही। अत: विश्वास बना रहे।

पापोंसे कभी डरे नहीं। मनुष्य दुर्बल है, उससे पाप बन जाना बड़ी बात नहीं है, परंतु पापोंके भयसे त्रस्त होकर पीछे हट जाना कायरता है। ऐसी दुर्बलताको मनसे सदाके लिये हटा दे। भगवदाश्रय होकर, पापकी पुनरावृत्ति न हो, इसके लिये सदा सचेष्ट रहे। भगवान्के सामने अपना बल न दिखाये, वहाँ तो बस ***'निर्बल ह्वै बल राम पुकार्‌यो'***। केवल हरिकी शरण ही पूरी दृढ़ताके साथ लिये रहे। संसार और पापोंके सामने कभी हार न मान बैठे। चोरोंके सामने दबना क्यों? उन्हें देख करके तो जोरसे कह देना चाहिये कि—'सावधान! मैं जग रहा हूँ।' संसार या विषय जब आँख दिखावें तब एकमात्र भगवान्के बलका स्मरणकर उनको पैरोंके नीचे रौंद डालना चाहिये। जब मुझे भगवान्का बल प्राप्त है तब डरना किससे? भगवान्के बलके महत्त्वको जान लेनेवाला संसारकी असारताको प्रत्यक्षकर कह उठता है कि—

मैं तोहिं अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट-आगार॥

× × ×

निज हित सुनु सठ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभुके दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार॥

(विनयपत्रिका १८८)

तुलसीदासजीके समान हमें भी निर्भय होकर यह कहना चाहिये—'अरे मायावी संसार! अब हमने तुझे जान लिया है। तू प्रत्यक्ष ही कपटका घर है। पर अब हमें भगवान्का बल मिल गया है, इससे तू अपने कपट-जालमें हमको बाँध नहीं सकता।' परमात्माके बलका आश्रय लेते ही परमात्माकी मायासे बना हुआ यह संसार सर्वथा मिट जायगा, और तब उसका मायावी फंदा हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। संसार धोखा है। देखनेमात्रका ही सुन्दर है, और विचार करनेपर तो कुछ भी नहीं है। वस्तुत: इसका अस्तित्व ही नहीं है। जैसे केलेके वृक्षको उधेड़े तो उसमेंसे कभी गूदा निकलता ही नहीं—चाहे कितना ही छीले, छिलका-ही-छिलका निकलता जायगा। यही थोथी दशा इस नि:सार संसारकी है। इस मायावी संसारसे सदा ही सतर्क तथा सावधान रहे, उसे प्रताड़ित करता रहे। अरे दुष्ट! सुन, तू चाहे करोड़ों प्रकारके छल-बलकर मुझे डिगानेका प्रयास कर, पर जिसने भगवान्का आश्रय ले लिया है, वह कभी तेरे चंगुलमें नहीं पड़ सकता। तू अपनी (विषयोंकी) सेनाओंसहित वहीं जाकर डेरा डाल, जिस हृदयमें नन्दनन्दन श्रीकृष्ण-भगवान्का वास न हो। जिस भक्तके हृदयमें भगवान्का निवास है, वहाँ तेरा क्या काम? वहाँ तेरी एक न चल पायगी।

इस प्रकार बस, साधनपथमें प्रतिपल एकमात्र भगवान्का सहारा लेना चाहिये और यही दृढ़ विश्वास रखते हुए अडिग निश्चयके साथ, निर्द्वन्द्व हो, उस पथपर अग्रसर होता रहे। आरम्भमें कुछ संघर्ष—काम-क्रोधादि विकारोंसे हवाई लड़ाई कुछ देरतक रहेगी और फिर? फिर तो साधनाका प्रशस्त आनन्ददायी मार्ग और उस मार्गपर हँसते हुए आनन्द मनाते चलते रहनेपर आगे और आगे जानेपर अपने लक्ष्यकी प्राप्ति! हृदयधन हरिका साक्षात्कार या मुक्ति; कुछ भी कहें। यही हमारी विजय है और यह होगी निश्चित ही! किंतु यह विजय कब मिलती है? यह विजय मिलती है कामादि शत्रुओंका सर्वथा नाश होनेपर, जब हमारा हृदय प्रभुका निवास बन जाता है—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजय:।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दन:॥

जिसके हृदयमें नील-कमलसदृश भगवान् जनार्दन नित्य-निरन्तर विराजमान हैं, जीवनका सुलाभ और विजय निश्चितरूपसे उसीके लिये है। उसकी पराजय है ही कहाँ? पराजय कभी हो ही नहीं सकती; क्योंकि उसने प्रभुका आश्रय लिया है, इसलिये विजय सुनिश्चित है।

प्रसन्नता

(पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी०)

प्रसन्नता किसको प्यारी नहीं है? कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो प्रसन्न न होना चाहता हो? कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो प्रसन्न मनुष्यके समीप न ठहरना चाहता हो? हम सभी बालकको प्यार करते हैं। क्यों? इसीलिये न कि बालक उस प्रसन्नतामें रहता है, जो हमें दुर्लभ है। खिला हुआ फूल सबको प्यारा है और मुरझाये हुए फूलका सभी तिरस्कार करते हैं। रोते हुए मनुष्यसे सबका जी ऊब जाता है; हँसते हुएका सभी स्वागत करते हैं। उससे किसीका जी नहीं ऊबता। जिसका मन प्रसन्न नहीं, उसके पास कुछ नहीं और जिसका मन प्रसन्न है, उसके पास सब कुछ है।

प्रसन्नता शक्तिकी परिचायिका है। जिस मनुष्यके अन्दर आध्यात्मिक शक्ति है, वही प्रसन्न रह सकता है। प्रसन्नता स्वयं उस शक्तिकी उत्पादिका भी है। जो मनुष्य जितना प्रसन्न रहता है, वह अपना आध्यात्मिक बल उतना ही बढ़ा लेता है। इतना ही नहीं, वह अपनी शारीरिक शक्तिकी भी वृद्धि कर लेता है। मन प्रसन्न रहनेपर शरीरकी अमृत पैदा करनेवाली ग्रन्थियाँ अपना काम भली प्रकारसे करती हैं और शरीरमें उन पदार्थोंका प्रवाह जारी रखती हैं, जिनसे शरीर अक्षय बना रहता है और बढ़ता है। विरला ही प्रसन्नचित्त मनुष्य रोगी मिलेगा।

प्रसन्नता मानसिक तपसे प्राप्त की जाती है। बालककी प्रसन्नता प्रकृति-दत्त है। पर उसकी प्रसन्नता सहज ही भंग भी हो जाती है। प्रौढ़ मनुष्योंकी प्रसन्नता पुरुषार्थसे उपलब्ध होती है। यह साधनासे आती है। प्रसन्नता प्रतिकूल परिस्थितियोंसे नष्ट नहीं होती। प्रौढ़ लोगोंकी प्रसन्नता ही वास्तविक प्रसन्नता है; क्योंकि वह स्थायी रहती है। इस प्रसन्नताको हम सभी लाभ कर सकते हैं। इसके लिये हमें आध्यात्मिक शक्ति बढ़ानी पड़ेगी।

आध्यात्मिक शक्तिकी वृद्धि उस शक्तिके बढ़ानेके उपायोंको काममें लानेसे हो सकती है। जिस प्रकार शरीरकी शक्ति स्वास्थ्यसम्बन्धी नियमोंका पालन करनेसे बढ़ सकती है, उसी तरह मनकी शक्ति भी आध्यात्मिक जीवनसम्बन्धी नियमोंके पालनसे बढ़ती है। संसारके सभी धर्मग्रन्थोंने इस आध्यात्मिक शक्तिके बढ़ानेके उपाय बताये हैं। भारतीयोंने तो इस विषयका एक विज्ञान ही निर्माण कर दिया है।

आध्यात्मिक शक्तिके संचयके चार उपाय योगवासिष्ठकारने बताये हैं। वे ये हैं—शम, सत्संग, सन्तोष और विचार। मनका अनेक प्रकारसे नियमन करना ही शम है; सात्त्विक उपवास, इन्द्रियनिग्रह आदि शमके ही अन्तर्गत हैं। सत्संगसे कुवृत्तियाँ निवृत्त होती हैं और सुप्रवृत्तियाँ सबल होती हैं तथा अनेक प्रकारके सद्विचार मनमें उठते हैं, जो हमारे मनको काबूमें लानेमें सहायता करते हैं। दूसरे व्यक्तियोंका आध्यात्मिक बल हमें अपने आपको सँभालनेमें गुप्तरूपसे सहायता देता है और ज्ञानमें हमारी रुचि बढ़ाता है। सन्तोषसे हमारी शक्तियोंका अपव्यय रुकता है। विचारके द्वारा हम भले-बुरे, सत्-असत्की पहचान करते हैं। मनुष्य विचारके द्वारा अपने आपको ऊँचा उठाकर परमपदको प्राप्त कर लेता है। पशुओं और बालकोंमें विचार करनेकी योग्यता नहीं है; अतएव वे परमपदकी प्राप्ति नहीं कर सकते।

यदि हम एक ही शब्दमें आध्यात्मिक उन्नतिका उपाय बताना चाहें तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि सांसारिक विषयोंमें मनका जाना रोकनेसे आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है और सांसारिक विषयोंमें उसके बेरोक-टोक जानेसे उसकी शक्ति घटती है। भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीतामें कहते हैं—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

(२।६२-६३)

अर्थात् विषयोंमें रमण करना ही मनुष्यके लिये घातक है। प्रत्येक ऐसे विषयको मनसे हटाते रहना चाहिये, जो प्रसन्नतामें बाधक हों। अपनी हानिपर

देरतक नहीं सोचना चाहिये। हानिकी भावना प्रसन्नताका नाश कर देती है। इससे हमारी आध्यात्मिक शक्तिका भी ह्रास होता है। सब प्रकारकी घटनाओंके अच्छे पहलूपर विचार करनेसे मनकी प्रसन्नता बनी रहती है। संसारकी प्रत्येक घटनाके दो पहलू होते हैं। जिस मनुष्यका मन घटनाके बुरे पहलूकी ओर चला जाता है, वह अपनी प्रसन्नताको अपने ही हाथों नष्ट कर डालता है। इसके विपरीत जिसका मन अच्छे पहलूपर चला जाता है, वह अपने आपको प्रसन्न बनाये रखता है। प्रत्येक प्रकारकी हानिसे मनुष्यका कुछ-न-कुछ लाभ होता है और प्रत्येक लाभसे कुछ-न-कुछ हानि होती ही है। हानिकारक घटनाओंमें लाभको ढूँढ़ निकालना बुद्धिमानीका काम है। यदि कोई लाभ प्रत्यक्ष न दिखायी दे तो हमें यह समझना चाहिये कि उसका लाभ तत्काल अप्रत्यक्ष है, पीछे प्रत्यक्ष हो जायगा।

प्रसन्नता एक संक्रामक पदार्थ है। जिस तरह रोग संक्रामक होता है, उसी तरह स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। रोगी मनुष्य अपने रोगका प्रचार आस-पास रहनेवालोंमें करता है; इसी प्रकार स्वस्थ मनुष्यको देखकर दूसरे लोग भी स्वस्थताका अनुभव करने लग जाते हैं। प्रसन्नताका भी यही हाल है। शारीरिक विकार उतने संक्रामक नहीं होते, जितने मानसिक विकार होते हैं। एक रोगी मनुष्यको देखकर दूसरा तुरंत रोगी नहीं हो जाता, पर एक दुखी मनुष्यको देखकर दूसरेका हृदय भी दुःखसे भर जाता है। इसी तरह प्रसन्नचित्त अथवा हँसते हुए लोगोंके समाजमें जाकर हम भी प्रसन्न हो जाते हैं अथवा हँसने लगते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य अपने-आप प्रसन्न रहकर अनायास परोपकार करता है। अंग्रेजी लेखक स्टिवेन्सन (Stevenson)-का कहना है कि प्रसन्नचित्त मनुष्यका मिलना पाँच पौंडके नोटके मिलनेसे अधिक लाभदायक है (A happy man or a woman is a better thing to meet than a five pound note)। मनुष्य जो काम प्रसन्नताकी अवस्थामें करता है, उसीसे दूसरोंका वास्तविक लाभ होता है। बरबस चिढ़कर किये गये कामसे कोई लाभ नहीं होता। यदि कोई मनुष्य बाध्य होकर दान देता है तो ऐसा दान उसका कोई कल्याण नहीं करता। प्रसन्नतासे दिया दान ही दोनों पक्षोंका कल्याण करता है। प्रसन्नताकी अवस्थामें जो कार्य किया जाता है, वह त्रुटिहीन रहता है। यदि कोई ऐसा काम करते समय भूल हो भी जाती है तो वह तुरंत दिखायी दे जाती है। किंतु अप्रसन्नताकी अवस्थामें किये गये कार्यमें ऐसी अनेक त्रुटियाँ रह जाती हैं, जो काम करते समय हमें दिखायी नहीं देतीं। मनुष्यको अपने ऊपर उतनी ही जिम्मेदारी लेनी चाहिये; जितनी वह प्रसन्नतासे उठा सके।

अप्रसन्नता आध्यात्मिक और शारीरिक दोनों प्रकारकी शक्तियोंका ह्रास करती है। निराशावादी पुरुष सदा आत्मघात करता रहता है। इसी तरह क्रोधी भी अपनी सारी मानसिक शक्तिका नाश कर डालता है। ऐसे लोगोंका शरीर भी रोगग्रस्त हो जाता है। वे थोड़े ही कालमें अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर डालते हैं। निराशा और क्रोध दोनों ही मनुष्यके लिये घातक हैं। इन दोनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्रोधका लक्ष्य दूसरेका विनाश करना है और निराशाका आत्मविनाश। क्रोध ही कुछ कालके बाद निराशामें परिणत हो जाता है।

मनुष्यको चाहिये कि वह सदा ऐसे वातावरणमें अपने आपको रखे, जिसमें उसके मनकी प्रसन्नता नष्ट न हो। उसे क्रोधी, निराशावादी, नुक्ताचीनी करनेवाले, तथा ईर्ष्यालु लोगोंसे बचना चाहिये। उसे त्यागी और परोपकारी पुरुषोंसे सम्पर्क बढ़ाना चाहिये। यदि उसे ऐसे पुरुषोंका सत्संग प्राप्त न हो तो उसे अपना समय उनके विचारोंका मनन करनेमें बिताना चाहिये। सदाचारी पुरुषोंके विचार पुस्तकोंमें पाये जाते हैं। हम जिस समय किसी महात्माके विचार किसी पुस्तकद्वारा प्राप्त करते हैं, उस समय हम उसके सत्संगका ही लाभ करते हैं। महात्मागण सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं और अपनी मानसिक अवस्थाका प्रभाव दूसरोंपर अनायास ही डालते रहते हैं।

भूखा मनुष्य प्रसन्नचित्त नहीं रह सकता। प्रसन्नता क्षुधा-शान्तिकी परिचायिका है। वह पूर्णताके अनुभवका परिणाम है। अतएव जो मनुष्य अनेक प्रकारके पदार्थोंका

इच्छुक है, वह कदापि प्रसन्नचित्त नहीं रह सकता। बिना मनकी भूखको शान्त किये प्रसन्नता नहीं आती। यह भूख शरीरकी भूखके समान नहीं है। शारीरिक भूख भोजनकी प्राप्तिसे शान्त होती है, मनकी भूख विषयोंके प्राप्त होनेसे और भी बढ़ती है। यह ज्ञान-वैराग्यसे ही शान्त होती है। मनका भटकना जबतक जारी है, तबतक प्रसन्नताके दर्शन नहीं होते। जब मन आत्मामें ही रमण करने लगता है, तब उसकी स्वाभाविक प्रसन्नता फूट पड़ती है।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई

(श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी)

जब उस प्रेमकी दीवानीने अनुभव किया होगा इस परम अवस्थाको, प्रवेश किया होगा इस दिव्य अवस्था के संसारमें, एकाकार हो गयी होगी जब आपके लिये उन पावन पुनीत क्षणोंमें उस प्रेमरसमें डूबी भक्त-शिरोमणि मीराके अतिरिक्त कौन रहा होगा?

जब उसने सारी लोक-लाज, देश-काल, उचित-अनुचितका भाव भूलकर एक इकतारेके तारोंको छेड़कर उसके हृदयको भी अपनी पावन पुनीत उँगलियोंका स्पर्श देकर उसमें भी भक्तिविह्वलता, भावविह्वलता उत्पन्न की होगी तो वह भी तो गा उठा होगा ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।'***

जब बँध गये होंगे उस संत-शिरोमणिके पद-पंकजोंमें प्रेमके घुँघरू, भक्तिके घुँघरू, विरहके घुँघरू, नवजीवनके घुँघरू, दिव्य संगीतके घुँघरू, पावन नादके घुँघरू, प्रेमरससिक्त घुँघरू तब प्रत्येक पदचापसे प्रत्येक घुँघरूसे झंकृत हुए होंगे दिव्य स्वर ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई'***।

जब बह चल होगा सारी मर्यादाका बाँध तोड़कर प्रेम-पयोधि, अविरल अश्रुधार नयनोंमें भरकर जब बह चली होगी नेत्रोंसे प्रेमकी गंगा, जब प्रत्येक अश्रुकण परिपूरित हो उठा होगा प्रेमरससे, प्रेमके संगीतसे, तब एक पावन दिव्य घटना घटी होगी इसी धरतीके ऊपर, इसी अम्बरके नीचे, जब मन्दिरके प्रांगणमें साँवरेकी मूर्तिके सम्मुख जड़-जंगम-चेतन सम्मिलित हो गये होंगे क्षणार्धके लिये उस पावन पुनीत दिव्य घड़ीमें और वनके मयूर, अमराईमें बैठी कोकिला और पपीहेने गाया होगा ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई'***।

जब ठहर गयी होगी कुछ पलोंके लिये यमुनाकी स्वाभाविक गति, वायुका वेग, पृथ्वीकी चाल, भोगनेके लिये, डूब जानेके लिये, मगनमन होनेके लिये, उस दिव्य घड़ी, दिव्य आनन्दकी, तो भला इस पंक्तिके सिवा और क्या गाया होगा उन सबने ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई'***।

आप अपने भक्तके वशमें हैं, रहते हैं न, ऐसा आपने सदैव कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे**……।**

आपका सर्वस्व आपका भक्त ही तो है।

आपका तन, मन, धन, प्राण आपका भक्त ही तो है।

आपकी अनुभूति आपके भक्तके द्वारा ही तो की जा सकती है।

भक्तके बिना आप अपने अस्तित्वको नहीं मानते।

भक्तके बिना आप पाषाणकी मूर्तिके अतिरिक्त और रह ही क्या जाते हैं?

भक्त ही आपकी प्रतिष्ठाका सार हैं, जीवन्तता हैं और जीवन हैं।

भक्तकी भक्तिका सूत्र यही तो है जो मीराको उपलब्ध हो गया था और वह गा उठी थी… ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई'***।

मानवसे देवत्वकी प्राप्ति इन्हीं क्षणोंमें तो होती है।

मानव-जीवनकी धन्यता इन्हीं क्षणोंको उपलब्ध होनेपर ही तो प्राप्त होती है।

हे भक्तवत्सल भगवान् श्रीनिवास! जिसको आपने कृपाकर ऐसे दिव्य क्षण उपलब्ध करा दिये, उसे भला अब क्या चाहिये? जिसको आपकी दी गयी अनुभूति प्राप्त हो गयी है, उसे तो बस… ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई'***।

साधकोंके प्रति—

['हरि ब्यापक सर्बत्र समाना']

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

यह संसार जो हमें इन्द्रियोंद्वारा दिखायी दे रहा है और जो कुछ भी हमारे जाननेमें आ रहा है, क्या वह ठीक वैसा ही स्थिर है, अथवा प्रतिक्षण बदल रहा है? विचार करनेसे पता चलता है कि दृश्यमात्र प्रतिक्षण बदल रहा है। शरीर जिस दिन जन्मा था,उस दिन कैसा था और आज कैसा है? यह तो हमारे प्रत्यक्ष अनुभवकी बात है। दो-तीन वर्षकी आयुमें जिसने इस शरीरको देखा हो, वही इसे आज देखे तो इतना बदला हुआ पायेगा कि पहचानना कठिन हो जायगा। पाँच वर्ष पूर्व हमारा शरीर जैसा था, वैसा आज नहीं है, इसमें किसीको भी सन्देह नहीं होगा। अत: यह बात दृढ़तासे कही जा सकती है कि शरीर बदल गया। परंतु कब बदला? यह तो है नहीं कि दस वर्षतक बदला नहीं और एक वर्षमें ही बदल गया। स्पष्ट है कि वह प्रत्येक वर्षमें बदलता रहा है। जो प्रत्येक वर्षमें बदला है, वह बारह महीनोंमें-से ग्यारह मासतक नहीं बदला, एक मासमें ही बदल गया, ऐसा भी नहीं है। अत: कहना पड़ेगा कि वह प्रत्येक महीनेमें बदला है। जो प्रतिमास बदला है, वह प्रतिदिन बदला है और इसी तरह प्रतिदिन बदलनेवाला प्रत्येक घंटेमें बदला है, प्रत्येक क्षणमें बदला है। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि शरीर प्रतिक्षण बदल रहा है। क्षण-क्षणमें होनेवाला परिवर्तन दिखायी न दे, यह अन्य बात है। गम्भीरतासे सोचें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि संसार परिवर्तनके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, प्रतिक्षण क्रिया-ही-क्रिया हो रही है। इस तथ्यकी सत्यतामें किसीको सन्देह नहीं होना चाहिये।

जो वस्तु प्रतिक्षण बदल रही है, उसे 'है' अर्थात् स्थिर कैसे कहा जाय? वह तो गंगा-यमुनाके जलकी भाँति बह रही है। गंगाजीके प्रवाहसे भी इसका प्रवाह तेज है। जो बदल रहा है, वह 'नहीं है' और जो 'नहीं है', वह 'है' के रूपमें अर्थात् स्थिर दिखायी दे रहा है—ये दोनों बातें परस्पर सर्वथा विरुद्ध हैं। 'है' तब तो बदलता नहीं, बदलता है तो 'है' नहीं। बदलता है तो 'है' कैसे? और 'है' तो बदले कैसे? इससे यह सिद्ध हुआ कि यह 'होनापन' संसारका नहीं है, प्रत्युत परमात्माका है, जिससे यह संसार 'नहीं' होता हुआ भी 'है' दीखता है।

एक स्थूल दृष्टान्त है—बूँदीके लड्डूमें प्रत्येक दाना बेसनद्वारा निर्मित है। बेसन फीका होता है, किंतु फीके बूँदीके दाने चीनीकी चाशनीमें डालनेसे मीठे हो जाते हैं। चीनीके संगसे बेसनकी फीकी बूँदी भी मीठी प्रतीत होने लगती है, तब चीनीके मीठेपनमें किसीको सन्देह कैसे होगा? उसी प्रकार प्रतिक्षण नष्ट होनेवाले नश्वर पदार्थोंको भी जो 'है' करके दिखा रहा है, उस परमात्माके 'होनेपन' में सन्देह कैसे हो सकता है? जैसे चीनीकी मिठास लड्डूमें सर्वत्र परिपूर्ण है, उसी तरह संसारमें वह 'है' (परमात्मा) सर्वत्र परिपूर्ण है। सत्य तो यह है कि इस 'है' के अन्तर्गत ही संसार दिखायी दे रहा है।

हम कहते हैं—'मैं शरीर हूँ और यह संसार है।' परंतु वस्तुत: ये भिन्न न होकर एक ही तत्त्व हैं अर्थात् शरीर और संसार एक जातिके हैं, यथा—***'छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥'*** (मानस ४।११।४)। दूसरी ओर 'हूँ' (जीवका होनापन) और 'है' (परमात्माका होनापन) एक जातिके हैं। अथवा यों कहिये कि 'हूँ' और 'है' तत्त्वत: एक ही हैं। संसारके कण-कणमें बूँदीके दानोंमें चीनीकी तरह 'है' व्याप्त है। यहाँ इतना अन्तर अवश्य है कि चीनीके बिना बूँदीकी (स्वतन्त्र) सत्ता है, परंतु (परमात्माके बिना) संसारकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। संसार तो केवल रागके कारण ही सत्‌रूप प्रतीत हो रहा है। जब परमात्मतत्त्वके साक्षात्कारद्वारा रागका अत्यन्त अभाव हो जाता है, तब सब ओर केवल परमात्मा ही दीखते हैं।

एक बात और ध्यान देनेकी है—जिनकी दृष्टि संसारसे परे कुछ देखना ही नहीं चाहती, उन्हें संसारको देखते समय परमात्मा दिखायी नहीं देते, संसार-ही-संसार दिखायी देता है। इसी प्रकार जो पूरी श्रद्धासे 'है'

(परमात्मा)-को देखेगा, उसे सर्वत्र 'है'-ही-'है' दिखायी देगा, संसार नहीं। यह बात सर्वथा सत्य है; परंतु जबतक मनुष्य इस सत्यताको जानेगा नहीं, तबतक उसे परमात्मतत्त्व कैसे दिखायी देगा?

ऊपर यह बात कही जा चुकी है कि संसार और शरीर एक ही जातिके हैं। जैसे किसी बालकसे कहा जाय कि यह लकड़ी मिट्टी ही है तो क्या वह इसे मान जायगा? किंतु उस अबोध बालकके स्वीकार न करनेपर भी बात तो सत्य है ही; क्योंकि मिट्टीमें डाला गया बीज ही वृक्ष बना, वही सूखनेपर काष्ठ हुआ। वह जला दिया जाय या सड़-गल जाय तो अन्तमें मिट्टी ही होगा। पहले भी वह मिट्टी ही था और बादमें भी मिट्टीरूपमें आ गया। समझदारकी दृष्टिमें तो काष्ठरूपमें भी वह मिट्टी ही है। इसी प्रकार संसारके आदिमें और अन्तमें भी परमात्मा हैं। बीचमें जैसे मिट्टी ही काष्ठके रूपमें दिखायी देती है, वैसे ही परमात्मा ही सारे शरीरों और पदार्थोंके रूपमें दिखायी देते हैं। परमात्मा होते हुए भी तबतक दिखायी नहीं देते, जबतक उन्हें तत्त्वसे नहीं जाना जाता। भगवान् गीता (१८।५५)-में कहते हैं—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

पराभक्तिके द्वारा जो मुझे (भगवान्‌को) तत्त्वसे जान लेता है, वह मुझे प्राप्त हो जाता है। उसकी दृष्टिमें मुझ वासुदेवके सिवा और कुछ भी नहीं रहता। 'भाव' ही पराभक्ति है। एक व्यापारी है, जो कोयला खरीदता है, उसे कोयलोंमें भी रुपये दिखायी देते हैं। व्यापारीको कोयलोंमें रुपये 'भाव'से ही तो दिखायी देते हैं, वस्तुतः हैं तो वे कोयले ही; फिर भी व्यापारीको कोयलोंसे कुछ मतलब नहीं, उसे तो रुपयोंसे काम है। केवल रुपयोंकी प्राप्तिके लिये वह कोयले खरीदता और बेचता है। सर्व-साधारणको उस व्यापारीकी तरह कोयलेमें रुपये नहीं दिखायी दे सकते। व्यापारीको 'भाव'से रुपये दिखायी देते हैं, नेत्रोंसे नहीं, इसी प्रकार भक्तको नेत्रोंसे संसार दिखायी देनेपर भी 'भाव'से परमात्मा दिखायी देते हैं। इसीलिये भगवान् कहते हैं—'भक्तिसे मैं जैसा हूँ, वैसा ही दिखायी दूँगा।' वस्तुतः परमात्मा अविनाशी एवं सर्वत्र व्यापक हैं, उन्हें देखनेहेतु चाहिये—प्रेम-चक्षु—

'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥'

(रा०च०मा० १।१८५।५)

सुखासक्तको शान्ति कहाँ

(संत श्रीपथिकजी महाराज)

इस जग में सुखासक्त मानव चिर शान्ति कहीं भी पा न सके।
सारे विज्ञानी जन मिलकर सुख को दुखरहित बना न सके॥
कुछ लोगों को तप संयम से अनुकूल शक्ति मिल जाती है।
पर वह भी व्यर्थ गयी दिखती यदि मन को वश में ला न सके॥
जो तन्त्र, मन्त्र औषधियों से सबको निरोग कर सकते हैं।
पर इससे क्या? यदि काम क्रोध मोहादिक रोग मिटा न सके॥
हमने तुमने इस आकृति का सुन्दर शृंगार किया लेकिन।
यह वृत्ति वेश्याओं की सी जब अन्तर प्रकृति सजा न सके॥
जब तक अभिमान प्रबल रहता तब तक निज दोष न दिखते हैं।
आसुरी वृत्तियों के कारण दैवी सम्पत्ति बढ़ा न सके॥
ज्ञानोपदेश की धारा में जो सबका मल धोने निकले।
पर क्या प्रभाव इसका होगा जब अपना मैल छुड़ा न सके॥
सत की चर्चा चलती रहती पर रमण असत में होता है।
तब पथिक कहाँ सत्संग हुआ आदि असत से प्रीति हटा न सके॥

[प्रेषक—श्रीकुँवरसिंहजी]

कहानी—

पगली माई

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

आगरेमें एक प्रतिष्ठित मुसलिम परिवार रहता था। परिवारमें एक बड़ी सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था जमीरन। उसके पिता इकबाल अहमद आगरेके प्रसिद्ध डॉक्टर थे। प्रचलित प्रथाके अनुसार आठ-नौ वर्षकी अवस्थामें ही जमीरनका विवाह बैरिस्टर याकूब साहबके सुपुत्रसे हो गया। भगवान्‌की इच्छा—जमीरन ससुराल जा पायी ही नहीं, उसके पति पढ़नेके लिये आगरेसे लखनऊ गये और इन्फ्लुएन्जाके शिकार हो गये। ठीक चौदह वर्षकी अवस्थामें जमीरन विधवा हो गयी।

मुसलमानोंमें विधवा होनेकी क्या चिन्ता? पिता और भाई पुनर्विवाह कर देना चाहते थे। पता नहीं जमीरनको क्या धुन सवार हुई, उसने विवाह करनेसे स्पष्ट अस्वीकार कर दिया।

पिताने बहुत समझाया 'हम हिन्दू थोड़े ही हैं, हमारे कुरानशरीफमें तो यह जायज़ है। लोग पता नहीं क्या कहेंगे। लड़का बहुत सुन्दर और पढ़ा-लिखा है।' पास-पड़ोसवालोंने भी आग्रह किया। भाईने डराने-धमकानेमें भी कोई बात उठा न रखी। पर उस लड़कीपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपनी बातपर अड़ी ही रही।

जब कोई बहुत कहता तो वह चुपचाप सिर नीचा करके रोने लगती। वैसे भी वह आजकल दिनभर किसी चिन्तामें रहती थी। नमाज पढ़नेमें मन नहीं लगता था। बहुत आग्रह करनेपर तो मसजिदमें जाती और वहाँ भी बैठी-बैठी आँसू बहाया करती। शरीर दिन-दिन सूखता जाता था। मुख पीला पड़ गया था।

डॉक्टरसाहबके यह एक ही लड़की थी। वे इसे बहुत प्यार करते थे। लड़कीकी दशासे उन्हें बड़ी चिन्ता रहती थी। पर करते भी क्या? कोई उपाय चलता न था।

वैद्य आये, डॉक्टर आये, हकीम आये। सबने देखा और दवा दी। परंतु रोगके मूलतक कोई पहुँच न सका। किसीकी दवासे कोई लाभ नहीं हुआ।

विवाहकी चर्चा बन्द हो गयी। घरवालोंने देखा कि इस चर्चासे लड़कीको बहुत कष्ट होता है, अतएव उन्होंने आग्रह छोड़ दिया। डॉक्टरसाहब चाहते थे कि यदि वह शादी न करनेमें ही खुश है तो वैसा ही सही, पर वह प्रसन्न रहे।

पता नहीं जमीरन क्या सोचा करती थी। वह एकान्तप्रिय हो गयी थी। किसीके भी समीप बैठना उसे पसन्द न था। कोई कहता तो स्नान कर लेती और कोई कहता तो भोजन। स्वयं उसे अपने शरीरके रक्षणका भी ध्यान नहीं रहता था।

एकान्तमें बैठकर सूने नेत्रोंसे कभी कमरेकी छतको, कभी दीवारोंको और कभी पृथ्वीको देखती रहती। उसके आँसू सूखना जानते ही न थे। उसे कुछ अभाव था—क्या? यह तो भगवान् ही जानें।

(२)

आगरेमें प्रसिद्ध रामायणी महात्मा जनकसुताशरण-जीकी कथाकी धूम थी। नित्य सहस्त्रों स्त्री-पुरुषोंकी भीड़ कथामें होती थी। कथाके अतिरिक्त समयमें भी महात्माजीको दर्शनार्थी भक्तोंका समूह घेरे ही रहता था। नगरकी गली-गलीमें महात्माजीकी कथाकी चर्चा थी। आजकल सभी लोग कथाकी ही बातचीत करते रहते थे।

बच्चोंने तो कथाकी चौपाइयाँतक स्मरण कर ली थीं और उन्हींको वे दुहराया करते थे। जमीरनको भी कथाका समाचार मिल चुका था। मुसलमान होनेपर भी उसमें साम्प्रदायिक संकीर्णता न थी।

'जब सब लोग कथाकी इतनी प्रशंसा करते हैं तो मैं भी एक दिन जाऊँ।' उसने किसीसे भी बतलाया नहीं। बुरका डालकर अकेली ही घरसे निकल पड़ी। पड़ोसीके घर जाकर, जो जातिका वैश्य था, उसकी स्त्रीके साथ कथामें चली गयी और पीछे स्त्रियोंके साथ

बैठ रही।

कथामें किसे पता कि कौन आया और कौन गया। सब लोग कथा-सुधाके पानमें तल्लीन थे। पूर्ण निस्तब्धता छायी हुई थी।

प्रसंग था श्रीरघुनाथजीके वनवासके समयका केवटका वार्तालाप। महात्माजीकी वाणीने प्रसंगमें और भी आकर्षण भर दिया था। श्रोताओंमें ऐसा एक भी व्यक्ति न था जिसके नेत्र सूखे हों। करुणरसकी धारा चल रही थी।

महात्माजीने प्रसंगवश भक्त रसखान और सदन कसाईकी कथा भी सुनायी और केवटकी भक्ति तथा श्रीरघुनाथजीकी उदारता एवं दयाका स्पष्ट चित्र श्रोताओंके सम्मुख रख दिया।

वक्ता स्वयं कथामय हो रहे थे। उनके नेत्रोंसे दो अविरल धाराएँ निकलकर मानसके पृष्ठोंको स्नान करा रही थीं। वे बार-बार गला भर जानेसे बीचमें रुक जाते और नेत्र पोंछकर फिर बोलने लगते।

समय हो गया था और प्रसंगकी गम्भीरतासे वक्ताका कण्ठ अवरुद्ध हो गया था। कोई नहीं चाहता था कि कथा बन्द हो, पर वक्ताने श्रोताओंके आग्रहपर भी शेष प्रसंग कलके लिये छोड़कर कथाका विश्राम किया। आरती हुई, प्रसाद वितरण हुआ। लोग अपने-अपने घरोंको लौटने लगे।

वह वैश्य-स्त्री उठी और जमीरनसे चलनेको कहने लगी। जमीरनने उसे रोका। तनिक अवसर मिला, वे दोनों महात्माजीके चरणोंमें प्रणाम करके एक ओर खड़ी हो गयीं। महात्माजीने पूछा 'क्या पूछना है?'

'आप जिस पुस्तकसे कथा कहते थे, उसे क्या मैं पढ़ सकती हूँ?' जमीरन वैसे हिन्दी अच्छी प्रकार पढ़ लेती थी।

'क्यों इसमें क्या आपत्ति है?' महात्माजीने साश्चर्य कहा। दूसरी स्त्रीने बतलाया 'ये मुसलमान हैं।'

'राम-नाम' के जप और रामायणजीके पाठमें सबका अधिकार है। रघुनाथजी केवल हिन्दुओंके ही थोड़े हैं, वे तो सबके हैं।' महात्माजीने एक छोटी-सी मानसकी प्रति लाकर उसे दे दी। 'इसे नित्य पढ़ती रहो और राम-राम कहती रहो।'

जमीरनने झुककर महात्माजीके चरणोंमें मस्तक रखा। उसने मन-ही-मन महात्माजीको अपना गुरु चुन लिया।

उसी दिनसे जितने दिनतक महात्माजी आगरेमें रहे, वह नित्य कथामे आती रही। कथाके आरम्भमें आती और कथाके समाप्त होनेपर उठकर चली जाती।

(३)

घरके और मुहल्लेके मुसलमानोंने बड़ा हल्ला-गुल्ला मचाया कि जमीरन तो काफिर हो गयी। बात कुछ नहीं थी, वह नमाज पढ़ने अब नहीं जाती थी और हिन्दुओंकी रामायण दिनभर पढ़ा करती थी। उसने मांसभक्षण भी छोड़ रखा था।

डॉक्टरसाहब क्या करते? लड़कीका मोह छोड़ा नहीं जाता था। डर था कि अधिक कड़ाई करनेपर वह रो-रोकर बीमार न हो जावे और समाजके मुसलमान उनके पीछे पड़े हुए थे। अन्ततः उन्होंने लोगोंसे स्पष्ट कह दिया कि मैं लड़कीकी इच्छामें बाधा नहीं डालूँगा।

समाज तो ऐसे ही चलता है। लोगोंने कुछ दिन तो बहुत व्यंग्य कसे और फिर जैसे-जैसे बात पुरानी पड़ती गयी, उसे भूल गये। उनके लिये विशेषसे वह साधारण बात हो गयी और सब तो शान्त हो गये, पर जमीरनकी भाभी और भाई शान्त नहीं हुए। वे बराबर उसके पीछे पड़े थे। भाईका कहना था कि 'वह शादी कर ले और काफिरोंकी इस पुस्तकको फेंक दे।' भाभी उसके मांस न खानेसे चिढ़ती थी और उसे व्यंग्यमें 'भगतिन' कहकर पुकारती थी।

पिताकी उदारता और प्रेमने जमीरनको सुविधा दे रखी थी। पिताके भयसे भाई अधिक उद्दण्डता नहीं कर पाता था। किसी प्रकार दिन कटते जाते थे।

जमीरनका मन इस परिवारसे ऊबता ही गया। उसे न तो परिवारवालोंके साथ बोलना अच्छा लगता और न

उनके साथ रहना। उसे यहाँ रहकर अपने जप और पाठमें भी कम अड़चन नहीं पड़ती थी।

उसके लिये मांसको पकते और दूसरोंको भक्षण करते देखना भी असह्य हो गया। वह घरमें मांस आनेपर कोठरी बन्द करके बैठ रहती। वह दिन दूध और फलपर काट देती। महीनेमें बीस दिन ऐसे ही बीतते।

धीरे-धीरे उसका अयोध्याकी ओर आकर्षण हुआ। कई बार उसने अयोध्या जानेका विचार भी किया, पर पिताके प्रेमको तोड़कर जाना भी उसके लिये शक्य न था।

आकर्षण बढ़ता गया और वह अयोध्या जानेके लिये व्याकुल रहने लगी। जिसे भगवान् स्वयं बुलाना चाहें, उसे रोक कौन सकता है! आगरेमें हैजा फैला और उसने डॉक्टर साहबको ले लिया।

घरमें सब लोग रो रहे थे, सब पछाड़ें खा रहे थे और जमीरनके नेत्रोंमें अश्रु भी न थे। उन्मत्त दृष्टिसे वह आकाशकी ओर एकटक देख रही थी।

डॉक्टरसाहबके इष्ट-मित्र सभी आ गये थे। फूलोंसे सजा हुआ शव कब्रगाहके लिये उठाया गया। जमीरन उठी और उस शवके साथ हो ली। लोगोंने बहुत लौटानेकी चेष्टा की, पर वह लौटी नहीं।

शवको कब्र दे दी गयी। लोग ऊपर पुष्प चढ़ाकर लौटे। पता नहीं कब जमीरन वहाँसे चली गयी थी। सबने समझा कि घर लौट गयी होगी। पर वह घर नहीं आयी थी।

सन्ध्याको एक बार फिर एक मुसलमानने कब्रके पास अकेली जमीरनको देखा और फिर किसीने उसे आगरेमें कभी नहीं देखा। भाईने बहुत चेष्टा की, पर जमीरनका उन्हें पता न लगा। पाँच सौ रुपयेके पुरस्कारकी घोषणा भी कोई फल नहीं दिखला सकी।

(४)

अयोध्यामें एक वृद्धा मुसलमान-स्त्री पगली माई करके प्रसिद्ध हो गयी थी। वह कभी अयोध्या रहती और कभी लखनऊ आ जाती थी। लोगोंकी उसपर बड़ी श्रद्धा थी। लोग उसे घेरे ही रहते थे। किसीने बताया कि पगली माई आगरेकी रहनेवाली है।

वह किसीसे कुछ बोलती नहीं थी। प्रातः नगरके बाहरसे आती और आकर किसी पेड़के नीचे बैठ जाती। लोग आकर उसे घेर लेते, दर्शन करते, फल उसके सामने रख देते।

पगली माई कभी फलोंको लोगोंकी ओर फेंक देती और कभी उन्हें वहीं छोड़कर किसी दूसरे पेड़के नीचे जा बैठती। किसीने नहीं देखा कि वह भोजन क्या करती है।

जिसपर वह बहुत प्रसन्न होती, उसकी ओर देखकर केवल हँस देती, कोई सांसारिक वस्तुओंकी कामना करता तो वह पृथ्वीपर थूक देती। कोई बहुत तंग करता तो उठकर वहाँसे चल देती।

पता नहीं लगा कि पगली माई रात्रिको कहाँ रहती है। सन्ध्या होते ही वह नगरसे बाहरकी ओर चल देती। कई बार लोगोंने पीछा किया, पर उन्हें जब कई मील चलना पड़ा तो हारकर लौट आये। अनुमान यह था कि वह कहीं सरयू-किनारे रहती होगी।

माई दिनभर अस्पष्ट ध्वनिमें सर्वदा कुछ कहा करती थी। उसके पास एक रामायणका गुटका भी रहा करता था। पर उसे पाठ करते या पुस्तक खोलते किसीने देखा नहीं।

दिनमें केवल एक बार वह कनकभवन जाती और भवनके सबसे बाहरी द्वारपर मस्तक टेककर चुपचाप लौट जाती। यही उसका नित्य क्रम था।

ठीक रामनवमीके उत्सवकी भीड़में जब पगली माईने मन्दिरकी देहलीपर मस्तक रखा तो वह फिर नहीं उठ सकी। बहुत देर बाद लोगोंका ध्यान उधर गया। 'जय सीताराम सीताराम सीताराम' की ध्वनिके मध्यमें बड़ी श्रद्धासे पगली माईकी सजी हुई अरथी वैष्णवोंने कन्धेपर रखी। अब भी वह रामायणजीका गुटका साथ था। भक्तोंने उस साकेतकी पगलीके शरीरको सरयूजीकी परमपावन गोदमें समर्पित कर दिया।

आजतक वैष्णवोंमें पगली माईका बड़े आदरके साथ स्मरण किया जाता है। महात्मालोग उसका दृष्टान्त श्रेष्ठ भक्तोंकी चर्चा चलनेपर दिया करते हैं।

अनन्य शरणागति

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)

श्रीमद्भगवद्गीताके सप्तम अध्यायके प्रथम श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने अपने समग्र रूपसे अर्जुनको अवगत करानेहेतु कहा—'**मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः। असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥**' अर्थात् हे पार्थ! अनन्य प्रेमसे मुझमें आसक्तचित्त तथा अनन्य भावसे मेरे परायण होकर योगमें लगा हुआ तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप मुझको संशयरहित जानेगा, उसको सुन।

अपने उपदेश-क्रममें भगवान् श्रीकृष्णने अन्यत्र अनेक स्थलोंपर चित्तको अपनेपर तन्मयतापूर्वक केन्द्रित करनेपर विशेष बल दिया है। उन्होंने अपने श्रीमुखसे जितेन्द्रिय पुरुषकी चित्त-वृत्तिको अपनेमें निरन्तर लगानेको आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञानका अनिवार्य सोपान माना है। अन्तःकरणको प्रभु-चरणोंमें सर्वान्तर भावसे नियोजित करनेके आध्यात्मिक महत्त्वको रेखांकित करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने अनेक प्रसंगोंमें घोषणा की है, यथा—'**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।**' (गीता ९।२२) अर्थात् जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भावसे भजते हैं···। '**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**' (गीता ९।३४) श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो तथा मुझको प्रणाम कर। '**मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।····**' (गीता १०।९) अर्थात् निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मुझमें ही निरन्तर रमण करते हैं। '**मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।**' (गीता १२।२) अर्थात् मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए भक्तजन... इत्यादि। '**मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।**' (गीता १२।८) अर्थात् श्रीभगवान् बोले—मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको भी लगा···। '**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।**' (गीता १८।५८) अर्थात् मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त संकटोंको अनायास ही पार कर जायगा।

उपर्युक्त सभी श्रीवचनोंमें भगवान् श्रीकृष्णने मनकी एकाग्रता, तन्मयता, एकोन्मुखता तथा अपने प्रति पूर्ण समर्पणके महत्त्वको स्पष्ट किया है।

इस संक्षिप्त लेखमें श्रीमुखसे निकले श्लोकके प्रारम्भिक दो शब्दों अर्थात् '**मयि**' तथा '**आसक्तमनाः**' पर प्रकाश डालनेका प्रयास किया गया है। अस्तु, पहले जीवके मनकी थोड़ी व्याख्या अभीष्ट है। यह तो सर्वविदित ही है कि मानव मन वायुके समान ही अत्यन्त चंचल, अस्थिर तथा भ्रमणशील है। मन स्वभावतः कभी भी, कहीं भी क्षणभरके लिये भी स्थिर नहीं रहता, जैसा कि अर्जुनने ठीक ही कहा है, यथा—'**चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥**' (गीता ६।३४) हे श्रीकृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान् है। इसलिये उसको वशमें करना मैं वायुको रोकनेकी भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ। अर्जुनके इस कथनकी पुष्टि भगवान् स्वयं इन शब्दोंमें करते हैं—'**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।**' (गीता ६।३५) हे महाबाहो! निःसन्देह मन चंचल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है। भगवान्ने आगे भी कहा है—'**असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।**' (गीता ६।३६) अर्थात् जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है।

तात्पर्य यह कि मनोनिग्रह अत्यन्त कठिन तथा दुष्कर है। इसके अतिरिक्त मनकी एकाग्रता तथा एकोन्मुखता भी बहुत दुस्साध्य है। इस सन्दर्भमें ध्यातव्य है कि मानव-जीवनमें मनका बड़ा महत्त्व है। वास्तवमें

जीवनकी सार्थकता मनके संयमन-नियमन तथा निर्देशनपर बहुत कुछ निर्भर है; क्योंकि मन ही मनुष्यके बन्धन तथा मोक्षका कारण है, यथा **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'** (मैत्राण्युपनिषद् ४।११)। निरन्तर संकल्प तथा विकल्पकी द्वन्द्वात्मक स्थितिमें सदा चलायमान रहनेवाले मनको वशमें करना तथा उसे परमात्माके चरणोंमें दृढ़तापूर्वक निरन्तर लगाना किन्हीं विरले महापुरुषोंके लिये ही सम्भव है।

वस्तुतः मनको हम उस सरोवरके समान कह सकते हैं, जिसमें विचाररूपी वायु कामनाओंकी असंख्य ऊर्मियाँ (लहरें) निरन्तर उत्पन्न करती रहती है। इन अनेकानेक कामनाओं एवं आकांक्षाओंके समूहको हम आसक्तिकी संज्ञा दे सकते हैं। वास्तवमें आसक्तिके मूलमें ममता (राग) विद्यमान रहती है अथवा हम यों कहें कि ममता आसक्तिकी जननी है। मानव मन स्वाभाविक रूपसे अनगिनत आसक्तियोंसे सदैव अच्छादित रहता है। ममता-मोह, राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प आदि अनेक द्वन्द्वों एवं आसक्तियोंसे पूर्णतया घिरे रहनेके कारण मानव-मन परमात्माकी ओर उन्मुख ही नहीं हो पाता; फिर भला प्रभु-चरणोंमें आसक्त होना तो बहुत दूरकी बात है। लौकिक आकर्षणों तथा मोहक आसक्तियोंका परित्याग मनुष्यको स्वतः ईश्वरके प्रति आकृष्ट कर देता है। सद्गति पानेहेतु विषय-वासनाओंका निर्मूलन तथा शुभ संकल्पोंका पोषण अत्यावश्यक है। शुभ विचारोंकी ओर अभिप्रेरित करनेहेतु ही हमारे तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियोंने **'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'** की कामना की थी।

मनकी सहज या स्वाभाविक प्रवृत्ति है विषयोंमें आसक्त होना। अपनी स्वाभाविक अस्थिरताके कारण मन कभी भी जीवको विश्राम नहीं लेने देता। अतिशय चंचल मनवाले व्यक्तिको भला विश्राम कहाँ? इस विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीकी स्वीकारोक्ति द्रष्टव्य है—***'कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो। निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो॥'*** (वि०प० ८८) तात्पर्य यह है कि विषयासक्त मन जीवको सांसारिक माया-मोह तथा प्रलोभनमें जकड़कर निष्कर्षतः उसे आवागमनके बन्धनमें बाँध देता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने 'श्रीरामचरितमानस' के उत्तरकाण्डमें अनेक मानस-रोगोंकी विस्तृत चर्चा की है। काम, क्रोध, मद, मोह आदि अनेक मानस-रोगोंसे संसार ग्रस्त है। जब एक व्याधि ही मनुष्य-जीवनका अन्त कर सकती है, तो भला ये अनेक मानसिक व्याधियाँ उसे निरन्तर घेरकर क्यों न घोर यातनाएँ देती रहें? ***'एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि। पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥'*** (रा०च०मा० ७।१२१क)

सारांश यह है कि विषयोंका सर्वथा परित्यागकर, मनकी शुद्धि करके उसे प्रभु (भगवान्)-की ओर उत्प्रेरित करना तथा उन्हींके श्रीचरणोंमें टिका देना ही मनोविजयकी सच्ची साधना है। मनका काम्य ही है निर्विषय होकर भगवत्परायण होना। मनकी निष्कपटता तथा पूर्ण निर्मलता प्रभुतक पहुँचनेका साधन है। गोस्वामीजी लिखते हैं कि प्रभु श्रीरामकी स्पष्ट घोषणा है—***'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥'*** (रा०च०मा० ५।४४।५) अर्थात् जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। गोस्वामीजीने मनके विकारोंको भेद-भावजनित अपार दुःख, भ्रम और भारी शोकका मुख्य कारण माना है, यथा—

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा॥

(वि०प० पद १२४।१)

गोस्वामी तुलसीदासजीने 'श्रीरामचरितमानस' में कतिपय प्रमुख भौतिक आकर्षणोंका (जिन्हें 'आसक्ति' की संज्ञा दी गयी है)-का वर्णन स्वयं भगवान् श्रीरामके श्रीमुखसे उस समय करवाया है, जब विभीषण प्रभुकी शरणमें उपस्थित होता है, यथा—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥

(रा०च०मा० ५।४८।४)

भगवान्ने कहा—हे विभीषण! माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार—ये दस प्रमुख आसक्तियाँ जीवमात्रको बन्धनमें जकड़े रहती हैं। इन सभी तथा अन्य अनेक आकर्षणोंसे सर्वथा विरक्त होकर जो व्यक्ति मेरे चरणोंमें पूर्णतया समर्पित हो जाता है, वह मुझको प्राप्त कर लेता है; मेरा अत्यधिक प्रिय पात्र बन जाता है। प्रभुने आसक्तियोंसे निवृत्तिका उपाय बताते हुए कहा—

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

(रा०च०मा० ५।४८।५—७)

प्रभु श्रीराम बोले कि इन सब (उपर्युक्त आसक्तियों)-के ममतारूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है अर्थात् सारे सांसारिक सम्बन्धोंका केन्द्र मुझे बना लेता है, जो समदर्शी है, जिसे कुछ भी इच्छा नहीं है और जिसके मनमें हर्ष, शोक और भय नहीं है—ऐसा सज्जन मेरे हृदयमें वैसे ही बसता है, जैसे लोभीके हृदयमें धन बसा करता है।

उपर्युक्त विवरणमें विविध आसक्तियोंका उल्लेख है, जिनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक आकर्षण हैं, जो मनको भगवान्से विमुख करते हैं। ध्यातव्य है कि विषयासक्त मन जीवको बाँधता है और निर्विषय मन उसे मुक्ति प्रदान करता है। मानव मनका परम तथा चरम लक्ष्य है आभ्यन्तर वृत्तिका पूर्णतया भगवद्मय हो जाना; प्रभुके प्रति सर्वतोभावेन अनुरक्त होकर समर्पित हो जाना। ऐसी स्थितिको ही भगवान् श्रीकृष्णने **'मय्यासक्तमनाः'** की संज्ञा दी है। संशयरहित होकर अनन्य भावसे प्रभुके प्रति पूर्ण आसक्ति रखनेवाले तथा निष्काम भावसे परमेश्वरका नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवाले श्रेष्ठ भक्तजनोंके लिये परमात्माका पूर्ण आश्वासन है—**'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥'** (गीता ९।२२) अर्थात् जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। प्रभु श्रीरामने भी विभीषण-शरणागतिपर यही आश्वासन दिया था—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० ६।१८।३३)

अतएव हम सभीको अनन्य भावसे प्रभुके चरणोंमें पूर्णरूपेण आसक्त होकर परम कल्याणकी ओर अग्रसर होना चाहिये।

शरण सफलताकी कुंजी है, निर्बलका बल है, साधक का जीवन है, प्रेमीका अन्तिम प्रयोग है, भक्तका महामन्त्र है, आस्तिक का अचूक अस्त्र है, दुखीकी दवा है, पतितकी पुकार है। वह निर्बलको बल, साधकको सिद्धि, प्रेमीको प्रेमपात्र, भक्तको भगवान्, आस्तिकको अस्ति, दुखीको आनन्द, पतितको पवित्रता, भोगीको योग, परतन्त्रको स्वातन्त्र्य, बद्धको मुक्ति, नीरसको सरसता और मर्त्यको अमरता प्रदान करती है। [**ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज**]

'रास रच्यौ बन कुँवर-किसोरी'

(डॉ० श्रीमती नीरूजी रस्तोगी)

रसेश्वर कृष्णके वेणुनादको सुनकर कौन ऐसा हृदयहीन होगा, जो उनके रसात्मक आवाहनको नकारकर उनके निकट न आये। उसको आना ही होगा; क्योंकि रासलीला परात्पर ब्रह्मकी अपनी जीवात्माओंको लौकिक धरातलसे पराङ्मुख करके स्वानन्दमें आकण्ठ सराबोर करनेकी लीला है। आनन्दका नाम ही रस है और ब्रह्मके लिये **'रसो वै सः'** कहा जाता है। **'स एकाकी न रमते'** ऐसा श्रुतियोंमें कहा गया है। वह अकेले कैसे रमण करे? इसीलिये उन ब्रह्माण्डनियन्ता श्रीकृष्णने द्वितीय स्वरूप अर्थात् स्वयंसे ही निःसृत अपने ही रसात्मक स्वरूप व्रजांगनाओंकी इच्छा की। फलस्वरूप स्वच्छ शरच्चन्द्रिका-धौत—निर्मल विभावरीमें जब रास प्रारम्भ होनेसे पूर्व मोहनका वेणुवादन होता है, तब ब्रज-गोपिकाएँ अपने समस्त लौकिक आधानोंको त्यागकर शीतल-मन्द-सुगन्ध समीरसे मादक-तरंग-संकुल यमुना-तटपर जा पहुँचती हैं। ये कृष्णकी चिर-विरहिणी नायिकाएँ हैं। जैसे ही अंश अपने अंशीसे बिछुड़ता है, उसका हृदय मिलनके लिये सदा-सर्वदा तड़पता रहता है—

जब मोहन मुरली अधर धरी।
गृह व्यवहार थके आरज पथ तजत न संक करी।
पद-रिपु पट अट्क्यो आतुर ज्यों उलटि पलटि उबरी॥

इसीलिये उन गोपिकाओंके कर्णपुट निर्जीव मुरलीके मधुरनादके रससे जब आप्लावित होते हैं, तब उनकी देह-दशा बिसर जाती है—

मुरली सुनत भई सब बौरी ।
छूटि सब लाजि गई कुल कानी । सुनि पति-आरज-पन्थ भुलानी॥

मुरलीके प्रति ब्रजांगनाओंके उपालम्भ उनके हृदयकी प्रेमाभक्तिकी सजीवताको प्रकट करते हैं। कृष्णके मुरली-प्रेमके कारण गोपांगनाएँ आपसमें अनेक प्रकारकी चर्चा करती हैं और उसको सपत्नीके रूपमें मानने लगती हैं—

मुरली तऊ गोपालहि भावति।
सुन, री सखी! जदपि नंदनंदहि नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पाँव ठाड़े करि अति अधिकार जनावति।
आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर कर पल्लव सों पद पलटावति॥
भ्रकुटी कुटिल, कोप नासापुट हम पर कोप जनावति।

रास-रस-आवेष्टित गोपकन्याओंके स्वरूपका अनुदर्शन आचार्योंने बृहद्वामनपुराणमें साक्षात् श्रुतिरूपा गोपीजनके रूपमें किया है—

न स्त्रियो ब्रजसुन्दर्यः पुत्र ताः श्रुतयः किल।
नाहं शिवः शेषश्च श्रीश्च ताभिः समाः क्वचित्॥
षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
तथापि न मया प्राप्ताः तासां वै पादरेणवः॥

अर्थात् 'ब्रजकी रमणियाँ साधारण स्त्रियाँ नहीं हैं। ये तो श्रुतियाँ ही हैं अर्थात् श्रुतियाँ गोपियोंका रूप धारणकर ब्रह्मके साथ रमती थीं। न मैं, न शिव, न शेष या न लक्ष्मीजी भी उनके बराबर नहीं हैं। पूर्वकालमें साठ हजार वर्षतक मैंने तपस्या की, तब भी उनका पद-रज भी मुझे नहीं मिल सका।'

रसात्मा कृष्ण गोपांगनाओंके अतिरिक्त अन्य किसीके साथ रमणकी इच्छा ही नहीं करते हैं, वे उनकी स्वयम्भूता अंगी, संगी एवं रंगी हैं। इसीलिये उनकी रसमयी लीलाओंका एकमात्र अधिष्ठान या तो वे स्वयं हैं या उनकी निजस्वरूपभूता गोपीजन और आह्लादिनी शक्तिस्वरूपा रासेश्वरी श्रीराधाजी। रासलीला भगवान् श्रीकृष्णकी भूमण्डलके जीवोंको रसमयता प्रदान करनेकी अत्यन्त दिव्यातिदिव्य लीला है।

'रास' शब्दका मूल अर्थ 'रस' है और रसस्वरूप

भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। जिस दिव्य क्रीड़ामें एक ही रस अनेक रसोंमें रूपान्तर धारण करता हुआ अनन्त रसोंका समास्वादन करे तथा रस-समूहमें प्रकट होकर स्वयमेव आस्वाद्य-आस्वादक लीला धाम और विभिन्न लीलायुक्त आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें क्रीड़ा करे, उसीका नाम 'रस' है। भगवान् श्रीकृष्णकी यह लीला गोलोकके दिव्य धाममें दिव्य रूपमें निरन्तर हुआ करती है।

भगवान् श्रीकृष्णका वेणुनाद जड़को चेतन, चेतनको जड़, विक्षिप्तको समाधिस्थ एवं समाधिस्थको विक्षिप्त बना देता है, किंतु इस रास-रसकी अधिष्ठात्री कौन हैं? श्रीकृष्णकी आत्मभूता श्रीराधाजी, जो कि श्रीकृष्णकी राससे सम्बन्धित समस्त क्रियाकलापोंकी शिक्षिका हैं—

सिखवत हरि को मुरली बजावन।
सप्तरंध्र पर धरत अंगुरीदल कंध बाहुधर मधुरे गावन॥
सरस भेद जति राग कान्हरो गति विलास वर नयन नचावन।
कृष्णदास बल-बल वैभवकी गिरिधर पिय प्यारी मनभावन॥

सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको नचानेवाले श्रीकृष्णको रासमें नृत्यकी शिक्षा रासेश्वरी श्रीराधाजी ही देती हैं; क्योंकि रास-रसकी वास्तविक भोग्या और आयोजिका वे ही हैं, जो कि सकल गुण और कला-प्रवीणा हैं। इसलिये रासकी संकल्पना और आयोजनमें उन्हींकी मुख्य सहभागिता है—

पिय को नचवन सिखवत प्यारी।
वृन्दावन में रास रच्यो है शरद रैन उजियारी॥
ताल मृदंग उपंग बजावत अति प्रवीन ललिता री।
रूप भरी गुण हाथ छरी लिए डरपत लाल बिहारी॥
वीणा वेणु नूपुर ध्वनि बाजत खगमृग बुद्धि बिसारी।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत रीझ देत करतारी॥

रास-लीला स्थलशोधिका श्रीयमुना हैं, उनके तटबन्ध कृष्णकी कामदेवपर विजयलीलाके क्रीड़ास्थलके साथ ही मूक सूचक भी हैं। श्रीकृष्णका सर्वाधिक प्रिय स्थल वृन्दा विपिनमें स्थित वंशीवट है, जो कि अनादिकालसे उनकी लीलाका साक्षी और सहचर है। गोपांगनाएँ और श्रीकृष्ण घनमें विद्युत् तरंगोंकी भाँति एक-दूसरेमें संग्रथित हैं। क्या जीवात्मा और ब्रह्मकी स्थिति भी ऐसी नहीं है, अर्थात् ऐसी ही है—

मानो माई घन-घन अन्तरदामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अन्तर शोभित हरि ब्रज भामिनि॥
यमुना पुलिन मल्लिका मुकुलित शरद सुहाई जामिनि।
सुन्दर राशि गुण रूप राशि निधि आनन्द मन विश्रामिनि॥
रच्यौ रास मिल रसिकराय सौं मुदित भई ब्रज भामिनि।
रूप निधान श्यामघन सुन्दर अंग-अंग अभिरामिनि॥
खंजन मीन मयूर हंस पिक भई भेद गज गामिनि।
कौतुक घने सूर नागर संग काम विमोह्यो कामिनि॥

केलिकलासम्पूर्ण कृष्ण ब्रह्मका पूर्ण रूप तो हैं ही, साथ ही रसराज शृंगारके एकमात्र अधिष्ठान भी हैं। भगवान् श्रीकृष्ण गीताजीमें स्वयं कहते हैं—

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥

'हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतोंमें धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल काम हूँ।'

इसीलिये कृष्णरसमें डूबी गोपियाँ जिनका भूतलपर अवतरण एकमात्र उनको प्राप्त करनेके लिये हुआ था उनके आवाहनपर तत्काल आनन्दरूपमें सराबोर होनेहेतु दौड़ पड़ती हैं। नृत्यका ऐसा अद्भुत समाँ बँधता है कि जड़-चेतन सभी उस रसमें डूब जाते हैं। नाद ब्रह्मके साकार रूप सांगीतिक वाद्य यन्त्रोंके साथ रासका रस अलौकिक हो जाता है—

रास रच्यौ बन कुँवर-किसोरी।
मंडल-विमल-सुभगवृन्दावन, जमुनापुलिन स्याम-घनघोरी।
बाजत बैंन, रबाब, किन्नरी, कंकन, नूपुर, किंकिनि-सोरी॥
तत-थेई, तत-थेई सबद उघटत पिय, भले बिहारि-बिहारिन जोरी।
वरहा-मुकुट चरन-तट आवत, धरैं भुजन मैं भामिन कौं री।
आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भन, 'परमानन्द' डारत तृन तोरी॥

नि:सन्देह ब्रजांगनाओंके साथ श्रीकृष्णकी यह लीला उनकी निष्काम स्नेहसिक्त आत्माओंका कृष्ण-रसमें आप्लावित होकर देहानुसन्धान एवं लौकिकावेशसे निर्मुक्त होकर अखण्ड आनन्दस्वरूप परमात्माके रसमें डूबना ही है। मानव देहधारियोंके जीवनका परम ध्येय भी आनन्द-प्राप्तिके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

'प्रणव' की उपासना*

(डॉ० श्री के० डी० शर्माजी)

मनुष्य योनि परमात्माकी श्रेष्ठतम कृति है। महर्षि वेदव्यासके अनुसार **'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्'** अर्थात् मनुष्यसे श्रेष्ठ अन्य कोई प्राणी नहीं है। मनुष्यकी श्रेष्ठता उसमें विवेक शक्ति होनेके कारण है। मनुष्यमें ईश्वरीय प्रज्ञा प्राप्त करनेकी सामर्थ्य है। सौभाग्यसे श्रोत्रिय (वेदज्ञ) तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिल जाय तो मनुष्य पूर्णत्व प्राप्त कर सकता है। यदि सद्गुरु नहीं मिले तो **'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'** के अनुसार भगवान् श्रीकृष्णको ही गुरुरूपमें धारणकर सद्शास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये।

शास्त्रोंके अनुसार सर्वप्रथम यह स्वीकार करना चाहिये कि 'परमात्मा है'। कठोपनिषद् (२।३।१३)-के अनुसार 'वह परमात्मा है और वह साधकको प्राप्त होता है'—इस विश्वाससे उन्हें स्वीकार करे और तत्पश्चात् तात्त्विक विवेचनपूर्वक निरन्तर उनका ध्यान करते हुए उन्हें प्राप्त करना चाहिये।' परमात्माको तत्त्वभावसे जाननेका तात्पर्य है श्रुति, स्मृति तथा युक्ति आदि शास्त्रोंके श्रवण, मनन और निदिध्यासनद्वारा परमात्माके तात्त्विक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करना। अन्तमें यह मन्त्र कहता है कि 'इन दोनों प्रकारकी उपलब्धियाँ प्राप्त होनेपर परमात्माका वास्तविक दिव्य स्वरूप साधकको प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।' आगेके दो मन्त्रों कठोपनिषद् (२।३।१४-१५)-में कहा गया है कि 'जिस समय हृदयमें स्थित समस्त कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं और हृदयकी अविद्याजनित सम्पूर्ण ग्रन्थियों ('मैं यह शरीर हूँ, यह मेरा धन है, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, यह मेरा परिवार है' इत्यादि)-का नाश हो जाता है, उस समय यह मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और इस शरीरमें ही ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है।' अन्तमें कठोपनिषद् (२।३।१५)-में नचिकेताको यमराज उपदेश देते हैं कि **'अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्' (अथ मर्त्यः अमृतः भवति हि एतावत् अनुशासनम्)** अर्थात् भौतिक कामनाओंका त्याग कर देनेसे साधक चेतनाके उच्च स्तरपर स्थित हो जाता है तथा इस जीवनमें अमृतस्वरूप हो जाता है, निश्चित ही, इतना ही अनुशासन (उपदेश) है। उपदेशके अन्तमें अनुशासन दिया जाता है।

कठोपनिषद् (१।२।२३) तथा मुण्डकोपनिषद् (३।२।३)-में कहा गया है कि 'परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न ही बहुत श्रवणसे ही प्राप्त हो सकता है। यह जिसे स्वीकार कर लेता है, उसको ही प्राप्त हो सकता है तथा उसके प्रति परमात्मा अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट कर देता है।' परमात्माकी दिव्यानुभूति प्राप्त करनेके लिये उत्कट इच्छा, चित्तकी निर्मलता और वैराग्यभाव साधकको भगवत्कृपाका अधिकारी बना देते हैं।

मुण्डकोपनिषद् (३।२।४)-के अनुसार 'परब्रह्म परमात्मा आत्मनिष्ठाजनित बलसे रहित, प्रमाद तथा सात्त्विक लक्षणरहित तपसे नहीं प्राप्त हो सकता, किंतु आध्यात्मिक बल, अप्रमाद तथा सात्त्विक तपसे परमात्माकी अनुभूति हो सकती है।'

केनोपनिषद् (२।५)-में कहा गया है कि 'इस मनुष्य शरीरमें परब्रह्मको जान लिया तब तो मानव-जन्मकी सार्थकता है। यदि नहीं जान पाया तो महान् विनाश अर्थात् जन्म-मृत्युरूप प्रवाहमें बहना पड़ेगा।' इस मन्त्रमें परमात्माको जाननेकी सरल विधि बतायी है कि सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें परमात्माका साक्षात्कार करते हुए विवेकी साधक सदाके लिये जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर अमर हो जाते हैं।

'ॐ' (ओंकार या प्रणव)-की उपासनासे परब्रह्म परमात्माकी अनुभूति—आद्यशंकराचार्यके अनुसार 'ॐ' यह अक्षर परमात्माका सबसे समीपवर्ती (प्रियतम) नाम है। इसका निरन्तर उच्चारण किये जानेपर परमात्मा प्रसन्न होते हैं। अतः 'ॐ' का जप, मनन तथा

* प्रणव (ओंकार)-की उपासना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, परंतु यह उपसना साधु-संन्यासी एवं विरक्तोंके लिये विशेष उपयोगी है। सामान्यतः इस उपासनाके अधिकारी यज्ञोपवीत धारण करनेवाले द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) ही हैं।

निदिध्यासन करना, परमात्माकी उपासनाका सर्वोत्तम साधन है। छान्दोग्योपनिषद्‌के प्रथम मन्त्र (१।१।१)-के अनुसार 'ॐ' यह अक्षर उद्‌गीथ है, इसकी उपासना करनी चाहिये। 'ॐ' ऐसा उच्चारण करके उद्‌गाता (उच्च स्वरसे सामगान) करता है। माण्डूक्योपनिषद्‌के प्रथम मन्त्रमें कहा गया है कि 'ॐ यह अक्षर ही सब कुछ है। यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है, वह सब 'ॐ' की ही व्याख्या है, अतः यह सब ओंकार ही है। इसके अतिरिक्त जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है, वह भी ओंकार ही है। इस उपनिषद्‌में कुल बारह मन्त्र हैं। इन मन्त्रोंमें 'ॐ' की चार मात्राओं (अ, उ, म् तथा मात्रारहित ॐ) और आत्माके चार पादों (वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय)-में साम्यता सिद्ध करते हुए कहा गया है कि जो ॐ को इस प्रकार जानता है, वह स्वतः अपनी आत्मामें ही प्रवेश कर जाता है। इस उपनिषद्‌पर भगवान् गौड़पादाचार्यद्वारा लिखित कारिकाओंके आगम प्रकरण (मन्त्र २५—२९)-में कहा गया है कि 'चित्तको ओंकारमें समाहित करें। ओंकार निर्भय ब्रह्मपद है। ओंकारमें नित्य समाहित रहनेवाले साधकको कहीं भी भय नहीं होता। ओंकार ही परब्रह्म है और ओंकार ही अपरब्रह्म माना गया है। ओंकार अपूर्व, अन्तर्बाह्य शून्य, अकार्य तथा अव्यय है। प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है। प्रणवको इस प्रकार जाननेसे साधक तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है। प्रणवको ही सबके हृदयमें स्थित ईश्वर जानें। इस प्रकार सर्वव्यापी ओंकारको जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता। जिसने अमात्र, तुरीय, अनन्त मात्रावाले, अद्वैत और मंगलमय ओंकारको जाना है, वह साधक मुनि है और कोई अन्य पुरुष नहीं।'

प्रश्नोपनिषद् (५।७)-के अनुसार यह जो ओंकार है, वही ब्रह्म है। जो उपासक त्रिमात्राविशिष्ट 'ॐ' (अकार, उकार, मकार)-की उपासना करता है, वह तेजोमय सूर्यलोकको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण शरीरोंमें अनुप्रविष्ट परमात्मा-संज्ञक पुरुषको देखता है। ओंकाररूपके द्वारा ही साधक शान्त, अजर, अमर, अभय एवं श्रेष्ठ लोकको प्राप्त होता है—

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं
सामभिर्यत् तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत्तच्छान्तजरममृतमभयं परं चेति॥

कठोपनिषद् (१।२।१५, १७)-में यमाचार्य नचिकेताको 'ॐ' की महिमाका उपदेश देते हैं कि 'सम्पूर्ण वेद जिस परमपदका बारम्बार प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिस पदका लक्ष्य कराते हैं और जिसको पानेकी इच्छासे साधकगण ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वह पद 'ॐ' है। यह अक्षर 'ॐ' ही ब्रह्म है, यही श्रेष्ठ आलम्बन है और इस आलम्बनको जानकर साधक ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है।'

मुण्डकोपनिषद् (२।२।४)-में ओंकारका महत्त्व सुन्दर रूपकद्वारा समझाया गया है कि 'ओंकार मानो धनुष है, जीवात्मा मानो बाण है और परब्रह्म परमात्मा ही उसके लक्ष्य हैं अर्थात् जीवात्मारूपी बाणको उपासनाद्वारा निर्मलकर उसको प्रणवरूप धनुषपर भलीभाँति चढ़ाकर परमात्मारूपी लक्ष्य बेधा जा सकता है। अतः ओंकारकी उपासनासे अविनाशी परमात्मामें प्रवेश किया जा सकता है।

तैत्तिरीयोपनिषद्‌की 'शीक्षा-वल्ली' के अष्टम अनुवाकमें आचार्य शिष्योंको उपदेश देते हैं कि 'ॐ' यह शब्दरूप ब्रह्म है—'**ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओꣳशोमिति। शस्त्राणि शꣳसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवो-पाप्नोति।**' ऐसा इसका मनसे ध्यान करें।'

श्वेताश्वतरोपनिषद् (१।१४)-में कहा गया है कि जिस प्रकार दो अरणिकाष्ठोंके मन्थनसे अग्निका प्राकट्य होता है, उसी प्रकार अपनी देहको नीचेकी अरणि और प्रणवको ऊपरकी अरणि बनाकर ध्यानरूपी मन्थन करते रहनेसे साधक अरणियोंमें छिपी हुई अग्निकी भाँति हृदयमें स्थित परमदेव परमात्माको देखता है।

भैरवाष्टमीपर विशेष—

श्रीभैरव एवं उनकी उपासना

(पं० श्रीसुरेशचन्द्रजी ठाकुर)

भारतीय धर्मपरम्परामें श्रीभैरव एक विशिष्ट देवता हैं। इनका एक स्वतन्त्र आगम है, जो भैरवागमके नामसे प्रसिद्ध है। भैरवको भगवान् श्रीविष्णु तथा शंकरके समकक्ष माना गया है। विष्णुस्वरूप होकर भी ये साक्षात् शिवके दूसरे रूप माने जाते हैं। शिवपुराणमें कहा है कि **'भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः।'**

आगमों तथा पुराणोंमें भैरव देवताके अनेक चरित्र प्राप्त होते हैं। उनके आविर्भावसे सम्बद्ध उपलब्ध अनेक आख्यानोंमेंसे एक मुख्य आख्यान यह है कि दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें योगाग्निद्वारा सतीके देहोत्सर्गकी घटनाको नारदद्वारा सुनकर भगवान् शंकरको सहसा तीव्र क्षोभ उत्पन्न हो गया और उन्होंने बड़े जोरसे अपनी जटा पृथ्वीपर पटकी तभी एक भीषण रव करता हुआ आकाशको स्पर्श करनेवाला भीषण दिव्य पुरुष प्रकट हो गया और कहने लगा कि आप मुझे क्या आज्ञा देते हैं? फिर शिवके कथनानुसार उसने दक्ष-यज्ञको भंग कर दिया। वही पुरुष भैरव देवताके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसलिये ये शंकरके स्वरूप एवं उनके पुत्र—इन दोनों रूपोंमें प्रसिद्ध हैं।

पुराणों तथा तान्त्रिक ग्रन्थोंमें भैरव देवताका अनेक रूपोंमें वर्णन आता है। इनके प्रमुख आठ नाम इस प्रकार हैं—

१-असितांग भैरव, २-रुरु भैरव, ३-चण्ड भैरव, ४-क्रोध भैरव, ५-उन्मत्त भैरव, ६-कपालि भैरव, ७-भीषण भैरव और ८-संहार भैरव। इसके अतिरिक्त शारदातिलक तथा बृहज्ज्योतिषार्णव आदिमें श्रीवटुक भैरवकी उपासना-पद्धति प्राप्त होती है। वटुक भैरवका पूजन सामान्य देवताओंकी भाँति ही किया जाता है। 'सप्तविंशतिरहस्यम्' में तीन वटुक भैरवोंके नाम तथा मन्त्रका वर्णन भी है, इनके नाम इस प्रकार हैं—१-स्कन्द वटुक, २-चित्र वटुक, ३-विरंचि वटुक।

'रुद्रयामलतन्त्र' तन्त्र-शास्त्रका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, इसमें ६४ भैरवोंका वर्णन है—

१-असितांग, २-विशालाक्ष, ३-मार्तण्ड, ४-मोदकप्रिय, ५-स्वच्छन्द, ६-विघ्नसन्तुष्ट, ७-खेचर, ८-सचराचर, ९-रुरु, १०-कोडदंष्ट्र, ११-जटाधर, १२-विश्वरूप, १३-विरूपाक्ष, १४-नानारूपधर, १५-पर, १६-वज्रहस्त, १७-महाकाय, १८-चण्ड, १९-प्रलयान्तक, २०-भूमिकम्प, २१-नीलकण्ठ, २२-विष्णु, २३-कुलपालक, २४-मुण्डपाल, २५-कामपाल, २६-क्रोध, २७-पिंगलेक्षण, २८-अभ्ररूप, २९-धरापाल, ३०-कुटिल, ३१-मन्त्रनायक, ३२-रुद्र, ३३-पितामह, ३४-उन्मत्त, ३५-वटुनायक, ३६-शंकर, ३७-भूतवेताल, ३८-त्रिनेत्र, ३९-त्रिपुरान्तक, ४०-वरद, ४१-पर्वतावास, ४२-कपाल, ४३-शशिभूषण, ४४-हस्तिचर्माम्बरधर, ४५-योगीश, ४६-ब्रह्मराक्षस, ४७-सर्वज्ञ, ४८-सर्वदेवेश, ४९-सर्वभूतहृदिस्थित, ५०-भीषण, ५१-भयहर, ५२-सर्वज्ञ, ५३-कालाग्नि, ५४-महारौद्र, ५५-दक्षिण, ५६-मुखर, ५७-अस्थिर, ५८-संहार, ५९-अतिरिक्तांग, ६०-कालाग्नि, ६१-प्रियंकर, ६२-घोरनाद, ६३-विशालाक्ष और ६४-दक्षसंस्थितयोगीश भैरव।

काली आदि दस महाविद्याओंके पृथक्-पृथक् दस भैरव इस प्रकार है—

१-महाकाल, २-अक्षोभ्य, ३-ललितेश्वर, ४-क्रोध भैरव, ५-महादेव भैरव, ६-कालभैरव, ७-नारायण भैरव, ८-मतंग सदाशिव भैरव, ९-मृत्युंजय भैरव और १०-वटुक भैरव।

वटुक भैरव देवताके सात्त्विक, राजस एवं तामस तीनों प्रकारके ध्यान तन्त्र-ग्रन्थोंमें वर्णित हैं। उनका सात्त्विक ध्यान शारदातिलक (२०।५०)-में इस प्रकार है—

वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुन्तलोल्लासिवक्त्रं
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किङ्किणीनूपुराद्यैः।
दीप्ताकारं विशदवदनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रं
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलदण्डौ दधानम्॥

अत्यन्त प्रभावपूर्ण शरीरयुक्त, प्रसन्न एवं घुँघराले

केशसे उल्लसित विस्तृत मुखमण्डलयुक्त और तीन नेत्रोंसे युक्त, दोनों करकमलोंमें क्रमशः त्रिशूल और दण्ड धारण किये हुए, अनुपम एवं दिव्य मणियोंसे निर्मित किंकिणीसे सुशोभित कटिवाले और मधुर ध्वनियुक्त नूपुरोंसे विभूषित पैरवाले तथा स्फटिकके समान उज्ज्वल वर्णवाले बालस्वरूप वटुक भैरवकी हम अहर्निश वन्दना करते हैं।

श्रीवटुकके प्रातःस्मरणीय दस नाम

कपाली कुण्डली भीमो भैरवो भीमविक्रमः।
व्यालोपवीती कवची शूली शूरः शिवप्रियः॥
एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
भैरवी यातना न स्याद् भयं क्वापि न जायते॥

श्रीभैरव देवताके कपाली, कुण्डली, भीम, भैरव, भीमविक्रम, व्यालोपवीती, कवची, शूली, शूर तथा शिवप्रिय—इन दस नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसे न तो कोई यातना होती है और न कोई सांसारिक भय होता है।

आगमग्रन्थोंमें इनके विभिन्न प्रकारके शतनाम, सहस्रनाम, कवच, स्तवराज आदि अनेक स्तोत्र प्राप्त होते हैं। देवी-पूजा आदिमें भी भैरवकी पूजा होती है। नवरात्रोंमें दुर्गापूजन तथा कुमारिका-पूजनके साथ वटुक भैरवकी पूजा होती है तथा प्रायः देवी एवं शिवमन्दिरोंमें इनका विग्रह अवश्य स्थापित रहता है। काशी-प्रयाग आदि मुख्य तीर्थोंके ये क्षेत्रपाल एवं नगरपाल माने गये हैं। वहाँ निर्विघ्न निवासके लिये इनका दर्शन-पूजन आवश्यक माना गया है।

श्रीकालभैरवाष्टकम्

देवराजसेव्यमानपावनाङ्घ्रिपङ्कजं व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम्।
नारदादियोगिवृन्दवन्दितं दिगम्बरं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ १॥
भानुकोटिभास्वरं भवाब्धितारकं परं नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम्।
कालकालमम्बुजाक्षमक्षशूलमक्षरं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ २॥
शूलटङ्कपाशदण्डपाणिमादिकारणं श्यामकायमादिदेवमक्षरं निरामयम्।
भीमविक्रमं प्रभुं विचित्रताण्डवप्रियं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ ३॥
भुक्तिमुक्तिदायकं प्रशस्तचारुविग्रहं भक्तवत्सलं स्थितं समस्तलोकविग्रहम्।
विनिक्वणन्मनोज्ञहेमकिङ्किणीलसत्कटिं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ ४॥
धर्मसेतुपालकं त्वधर्ममार्गनाशकं कर्मपाशमोचकं सुशर्मदायकं विभुम्।
स्वर्णवर्णशेषपाशशोभिताङ्गमण्डलं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ ५॥
रत्नपादुकाप्रभाभिरामपादयुग्मकं नित्यमद्वितीयमिष्टदैवतं निरञ्जनम्।
मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्ट्रमोक्षणं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ ६॥
अट्टहासभिन्नपद्मजाण्डकोशसन्ततिं दृष्टिपातनष्टपापजालमुग्रशासनम्।
अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकन्धरं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ ७॥
भूतसङ्घनायकं विशालकीर्तिदायकं काशिवासलोकपुण्यपापशोधकं विभुम्।
नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पतिं काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥ ८॥
कालभैरवाष्टकं पठन्ति ये मनोहरं ज्ञानमुक्तिसाधनं विचित्रपुण्यवर्धनम्।
शोकमोहदैन्यलोभकोपतापनाशनं ते प्रयान्ति कालभैरवाङ्घ्रिसन्निधिं ध्रुवम्॥ ९॥

॥ श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कालभैरवाष्टकं सम्पूर्णम्॥

मानसमें वर्णित उत्कृष्ट श्रीराम-प्रेमी

[गताङ्क ११ पृ०सं० ३४ से आगे]

(श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)

(७) जटायुजी में 'दरस प्रेम'

सीताजीका अपहरण करके ले जाते हुए रावणको गीधराज जटायुने अतुलनीय पौरुषका प्रदर्शन करते हुए चुनौती दी। लंकापति रावणने उनके पंख काट दिये। जटायुका क्षत-विक्षत शरीर धरतीपर गिर पड़ा। पीड़ाके असह्य क्षणोंमें भी उनकी एकमात्र अभिलाषा थी कि वे सीताजीका समाचार प्रभु रामको सुना सकें। जटायुजी पश्चात्ताप कर रहे हैं कि मरनेके समय भी मैं मुनिवेषधारी रामको न देख सका, अब प्रभुको सीताजीकी सुधि सुनाये बिना ही ये पामर प्राण प्रयाण करना चाहते हैं—

मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापस बेष बनाए।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय-सुधि प्रभुहि सुनाए॥

(गीतावली ३।१२।३)

इस प्रकार गीधराज पछताते हैं। इसी समय जानकीजीको ढूँढ़ते हुए लखनसहित श्रीराम वहाँ आये। प्रभुने गीधराजको गोदमें उठा लिया और अपने कर-कमलोंके स्पर्शसे उनकी पीड़ाको विनष्ट कर दिया। जटायु बोले—प्रभो! रावणने जानकीजीको हर लिया है। मैं उस दुष्टसे उन्हें न छुड़ा सका। वह विलाप करती हुई जनकनन्दिनीको दक्षिण दिशाको ले गया।

फिर गीधराजने कहा—प्रभो! आपके दर्शनोंके लिये प्राण रोक रखे थे। हे कृपानिधान! अब वे चलना चाहते हैं।

दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥

प्रभु श्रीराम जटायुसे जीवित रहनेका आग्रह करते हैं, जिससे वे उनकी कुछ सेवा कर सकें, पर गीधराज इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देते हैं। अपने शरीरको श्रीरामके नयन-जलसे भीगा जानकर हँसकर बोले—रघुनाथजी! मुझे तो अपनी मृत्युके सामने चारों फल तुच्छ प्रतीत हो रहे हैं और यदि आपको मेरी बात ठीक न लगे तो बताइये।

गीधराजको अधम खगयोनिके बदले जो कुछ प्राप्त हो रहा था, उससे बड़ा लाभ क्या हो सकता था?

धर्म—परहितके लिये उनका शरीर विनष्ट हुआ, इससे बढ़कर शरीरकी सार्थकता क्या हो सकती थी; क्योंकि ***'परहित सरिस धर्म नहिं भाई।'***

काम—कामके अनित्य सौन्दर्यके स्थानपर उन्हें सौन्दर्यसिन्धु प्रभु श्रीरामका रूप निहारनेका अवसर प्राप्त हो रहा था।

मोक्ष—अधम शरीरको छोड़कर वे प्रभुके मंगलमय धाममें प्रविष्ट हो रहे थे। ऐसी स्थितिमें जीवित रहकर घाटेका सौदा कैसे स्वीकार करते?

मेरे मरिबे सम न चारि फल, होहिं तौ, क्यों न कहीजै?

(गीतावली ३।१५।४)

गीधराज कहते हैं—मैं मुखसे आपका नाम ले रहा हूँ, आपके मुखारविन्दका दर्शन मुझे हो रहा है, आपके मधुर वचन मेरे श्रवणगोचर हो रहे हैं। दूसरा ऐसा कौन है, जो अपनेको मेरे समान बड़भागी बतला सके?

श्रवन बचन, मुख नाम, रूप चख, राम उछंग लियो हौं।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं॥

(गीतावली ३।१४।३)

जटायुजी यह भी कहते हैं—हे प्रभु! अत्यन्त निकटसे आपका दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ। इस देहसे ईश्वरकी प्राप्ति हो गयी, अब और किस पदार्थकी प्राप्ति बाकी रही, जिसके लिये शरीर बनाये रखूँ?

सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें॥

इसका उत्तर भगवान्‌ने मौन ही दिया, मानो गीधराजके प्रेमपर सही पड़ गयी और गीधराज प्रभु श्रीरामकी रूप-माधुरी देखते हुए अपने प्राणोंका परित्याग कर देते हैं। उन्हें भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हुआ।

अत: तुलसीदासजीने कहा—

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

(८) श्रीसीताजीमें 'तत्त्वप्रेम'

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी जानकीजीकी उत्तमता दिखाते हुए कहते हैं कि मैं श्रीजनक महाराजकी पुत्री, जगत्‌की माता, करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजीको अतिशय प्रिय जो श्रीजानकीजी हैं, उनके दोनों चरणकमलोंको मनाता हूँ; जिनकी कृपासे मैं निर्मल बुद्धि पाऊँ; क्योंकि निर्मल मनसे ही श्रीरामजीको पाया जा सकता है।

जनकनन्दिनी सीताजी पुष्पवाटिकामें श्रीरामजीके साँवरे रूपकी सुधाका पानकर अभिभूत हो नेत्रमार्गसे उन्हें हृदयमें स्थितकर पलकोंको बन्द कर लेती हैं।

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

वनगमनके पूर्व श्रीराम श्रीसीताजीको वनके कष्टोंको समझाते हुए संग ले जानेमें हिचक रहे हैं, परंतु श्रीसीताजी स्पष्ट कह देती हैं कि पतिकी अनुपस्थितिमें सभी सुख रोगके समान, आभूषण भारस्वरूप और संसार नरककी पीड़ाके समान है। पुरुषके बिना नारी जलविहीन सरिताके समान है—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

अन्तमें सीताजीके प्रेमकी विजय हुई और वे वनमें श्रीरामजीके संग गयीं।

प्रेम स्वयं अपनी पराकाष्ठा है। प्रेमके तापमें स्वयं परमात्मा भी तपे हैं। प्रभु श्रीराम बड़ी मर्यादाके साथ सीताजीको श्रीहनुमान्‌जीद्वारा यह मर्मस्पर्शी प्रेमपीड़ाका सन्देश भिजवाते हैं। 'मेरे और तुम्हारे प्रेमका तत्त्व एक मेरा मन ही जानता है और वह मन सदा तुम्हारे पास ही रहता है। बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ लो।'

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

और सीताजी यह सन्देश सुनकर प्रेममें मग्न होकर देहकी सुध-बुध भूल जाती हैं—

प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥

श्रीसीताजीने महान् प्रेम और नारी-धर्मकी मर्यादा प्रदर्शितकर स्त्रियोंके लिये लोक-परलोकका अनुकरणीय मार्ग दिखलाया है—

निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई॥
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी दोहावलीमें कहते हैं कि भलीभाँति नियमपूर्वक श्रीसीताजीके चरणोंमें प्रणाम करनेसे और उनके सुन्दर नामका स्मरण करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जाती हैं और अपने प्रिय प्राणनाथका प्रेम प्राप्त करती हैं।

सीता चरन प्रनाम करि सुमिरि सुनाम सुनेम।
होहिं तीय पतिदेवता प्राननाथ प्रिय प्रेम॥

कानोंसे चाहे कम सुनायी पड़े, आँखोंकी रोशनी भी चाहे घट जाय, सारे शरीरका बल भी चाहे क्षीण हो जाय, किंतु यदि श्रीहरिमें प्रेम नहीं घटे तो इनके घटनेसे हमारा क्या घट जायगा?

श्रवण घटहुँ पुनि दृग घटहुँ घटउ सकल बल देह।
इते घटे घटिहै कहा जौ न घटे हरिनेह॥

तात्पर्य यह है कि और चाहे जो भी घट जाय, प्रभु श्रीराममें प्रेम नहीं घटना चाहिये। [समाप्त]

संत-चरित—

श्रीरामकृष्ण परमहंस

(स्वामी श्रीअभेदानन्दजी महाराज)

श्रीरामकृष्ण परमहंस, एक मतसे आधुनिक भारतके संतशिरोमणि माने जाते हैं। १७ फरवरी सन् १८३६ ई० को बंगालप्रान्तान्तर्गत हुगली जिलेके 'कामारपुकुर' नामक एक अप्रसिद्ध गाँवमें पैदा हुए थे। इनका घरका नाम गदाधर चट्टोपाध्याय था और इनके माता-पिता ईश्वरप्रेमी, धार्मिक और उच्च आध्यात्मिक आदर्शोंसे सम्पन्न सनातनी ब्राह्मण थे।

श्रीरामकृष्णका असाधारण घटनाओंसे परिपूर्ण प्रारम्भिक जीवन जन्मस्थलीमें ही व्यतीत हुआ। चार सालकी अवस्थामें ही वह पहले-पहल समाधिस्थ हुए और दिनोंदिन उनकी यह प्रवृत्ति बलवती होती गयी। पुस्तकीय विद्यासे अरुचि होनेके कारण ग्रामीण प्राइमरी पाठशालासे उनकी शिक्षा समाप्त हो गयी, परंतु उनके अनुकरणीय चरित्र, कलानिपुणता, मधुर सुरीले स्वर, अपूर्व आनन्दमय अनुभव, अलौकिक व्यक्तित्व, असाधारण बुद्धि तथा सभी जातियों और सम्प्रदायोंके लोगोंसे निष्काम प्रेमके कारण वे आसपासके समस्त ग्राम-निवासियोंकी प्रशंसा तथा भक्तिके पात्र हो गये।

सन् १८५३ ई० में श्रीरामकृष्ण अपने सबसे बड़े भाई रामकुमार चटर्जीके साथ कलकत्ते आये और सन् १८५६ ई० में जब रानी रासमणिने इनके बड़े भाईको कलकत्तेके निकटवर्ती दक्षिणेश्वरमन्दिरका प्रधान पुजारी नियुक्त किया, तब ये उनके सहायक बन गये। रामकुमारकी मृत्युके बाद ये कई महीने वहीं बड़े भाईके स्थानपर रहे। इसी समय इनकी हिन्दूधर्मके विभिन्न अंगोंकी साधना आरम्भ हुई, जो बारह वर्षतक चलती रही। यहाँपर इन्होंने किस प्रकार तपस्या और त्यागमय जीवन व्यतीत किया, किस प्रकार तोतापुरीसे संन्यास लिया और उन्होंने इनका नाम 'रामकृष्ण परमहंस' रखा और किस प्रकार इन्होंने तान्त्रिक साधना तथा ख्रीष्ट और इस्लाम धर्मके अनुसार उन-उन धर्मोंके अनुयायियोंकी भाँति उपासना की—इन सब बातोंका वर्णन स्थानाभावके कारण नहीं हो सकता।

बचपनसे ही श्रीरामकृष्ण सम्प्रदायिकता तथा संकुचित भावोंके विरोधी थे; किंतु साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि सभी सम्प्रदाय और मत-मतान्तर सच्चे जिज्ञासुओंके समस्त धर्मोंके सर्वसम्मत लक्ष्यतक पहुँचानेके लिये भिन्न-भिन्न रास्ते हैं। संसारके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और मत-मतान्तरोंके अनुसार साधना करके उन्होंने प्रत्येक विशिष्ट धर्मके सर्वोच्च ध्येयको प्राप्त किया और साधनाद्वारा प्राप्त अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियोंका पुंज मानवजातिको दिया। उनके प्रत्येक विचार सीधे ईश्वरसे प्राप्त होते थे। उनमें मानवीय बुद्धि, संस्कार अथवा पाण्डित्यकी करामातोंका सम्मिश्रण नहीं था। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त उनका प्रत्येक कार्य असाधारण था। उनके जीवनकी प्रत्येक अवस्था किसी नये शास्त्रका एक-एक अध्याय थी, जिसे मानो पौर्वात्य और पाश्चात्य सभी लोगोंको लाभ पहुँचानेके लिये तथा बीसवीं शताब्दीकी अध्यात्म-सम्बन्धी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये स्वयं भगवान्ने अपने अलक्ष्य हाथोंसे खास तौरपर लिखा था।

उनके चरित्र और उपदेश इतने अलौकिक एवं चमत्कारपूर्ण थे कि उनके १६ अगस्त १८८६ ई० को संसारसे कूच करनेके दस वर्षके भीतर ही भूतपूर्व प्रोफेसर सी० एच० टॉनीने लन्दनके 'इम्पीरियल और क्वार्टर्ली रिव्यु' के सन् १८९६ ई० के जनवरीके अंकमें 'एक आधुनिक हिन्दू संत'(श्रीरामकृष्ण) शीर्षक लेख छपवाया था। दिवंगत प्रोफेसर मैक्समूलरने भी सन् १८९६ ई० के 'नाइन्टीन्थ सेंचुरी' (उन्नीसवीं शताब्दी) नामकी अंग्रेजी पत्रिकाके अगस्त अंकमें 'A Real Mahatma' (एक वास्तविक महात्मा) शीर्षकसे महात्मा रामकृष्णके जीवनका संक्षिप्त परिचय लिखा और बाद में ' Ramkrishan: His Life and Sayings' (श्रीरामकृष्ण : उनके चरित्र और उपदेश) नामक पुस्तक लिखी।

सन् १९०३ ई० में न्यूयार्क (अमेरिका)-की वेदान्त सोसायटीने 'Sayings of Ramkrishna' (रामकृष्णके उपदेश) तथा सन् १९०७ ई० में इस लेखककी भूमिकासहित 'Gospel of Ramkrishna' (रामकृष्णका सन्देश) नामक ग्रन्थ प्रकाशित किये। इस 'सन्देश'का बादमें यूरोपकी स्पैनिश, पुर्तगीज, डैनिश, स्कैण्डिनेवियन और चेकोस्लेवाकी भाषामें अनुवाद हुआ।

श्रीरामकृष्णके अवतारका हेतु

उनके अवतारका हेतु अपने जीवनके द्वारा यह दिखलाना था कि किस प्रकार कोई सच्चा आत्मज्ञानी इन्द्रियके विषयोंसे बहिर्मुख होकर परमानन्दमें लीन रह सकता है। वे यह सिद्ध करनेके लिये आये थे कि प्रत्येक आत्मा अमर है और ब्रह्मत्वको प्राप्त करनेकी सामर्थ्य रखता है। विभिन्न सम्प्रदायोंके अन्तस्तलमें सैद्धान्तिक एकता दिखाकर उनमें मेल स्थापित करना ही उनके जीवनका उद्देश्य था। पहले-पहल श्रीरामकृष्णने ही यह सिद्ध करके दिखाया कि समस्त धर्म एक नित्य सत्यकी ओर ले जानेवाले विभिन्न मार्ग हैं। परमात्मा एक है, किंतु उसके अनेक रूप हैं। विभिन्न जातियाँ उनकी पूजा विभिन्न नामों और रूपोंसे करती हैं। वह साकार भी है और निराकार भी और दोनोंसे परे निर्गुण भी है। उसके नाम और रूप होनेपर भी वह बिना नाम और बिना रूपका है।

उनका ध्येय था परमात्माको विश्वका माता-पिता सिद्ध करना तथा इस प्रकार स्त्रीत्वके आदर्शको जगदम्बाके पदपर प्रतिष्ठित करना। अपनी स्त्रीको वे मानवीरूपमें जगदम्बा ही समझते थे और 'षोडशी देवी' कहकर उनकी पूजा करते थे। इस प्रकार इस विलासिताके युगमें भी भौतिकेतर आध्यात्मिक विवाहकी सत्यता उन्होंने प्रमाणित की। उनकी स्त्री भगवती कुमारी शारदादेवीने पवित्रता, सतीत्व और जगन्मातृत्वका आदर्श स्थापित किया और वे भी श्रीरामकृष्णको मानवीरूपमें जगदीश्वर मानकर ही उनकी भक्ति करती थीं। संसारके धार्मिक इतिहासमें इस प्रकारके आध्यात्मिक विवाहका अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता, अपितु श्रीरामकृष्णने आध्यात्मिक जगत्में गुरुको स्त्रीरूपमें मानकर स्त्रीत्वके आदर्शको और भी ऊँचा बना दिया। धार्मिक इतिहासमें स्त्रीत्वको इतना सम्मान देनेवाला अन्य कोई मसीहा अथवा नेता नहीं देखा गया।

श्रीरामकृष्ण स्पर्शमात्रसे ही किसी भी पापीके चरित्रको अपनी दैवीशक्तिद्वारा पलट देते थे और उसे आध्यात्मिक जगत्में पहुँचा देते थे। वे दूसरोंके पाप अपने ऊपर ले लिया करते थे और अपनी आध्यात्मिक शक्ति उनमें डालकर तथा उन्हें ईश्वरके दर्शन कराकर उनको पवित्र कर देते थे। ऐसी अलौकिक शक्ति साधारण संतों और महात्माओंमें देखनेको नहीं मिलती।

श्रीरामकृष्ण परमहंसके उपदेश

१. वाद-विवाद न करो। जिस प्रकार तुम अपने धर्म और विश्वासपर दृढ़ रहते हो, उसी प्रकार दूसरोंको भी अपने धर्म और विश्वासपर दृढ़ रहनेका पूरा अवसर दो। केवल वाद-विवादसे तुम दूसरोंको उनकी गलती नहीं समझा सकोगे। परमात्माकी कृपा होनेपर प्रत्येक मनुष्य अपनी गलती समझेगा।

२. यह सच है कि परमात्माका वास व्याघ्रमें भी है, परंतु उसके पास जाना उचित नहीं। उसी प्रकार यह भी ठीक है कि परमात्मा दुष्टसे भी दुष्ट पुरुषमें विद्यमान है, परंतु उसका संग करना उचित नहीं।

३. पानी और उसका बुलबुला एक ही चीज है। बुलबुला पानीसे बनता है और पानीमें तैरता है तथा अन्तमें फूटकर पानीमें ही मिल जाता है; उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा एक ही चीज है, भेद केवल इतना ही है कि एक छोटा होनेसे परिमित है और दूसरा अनन्त है; एक परतन्त्र है और दूसरा स्वतन्त्र है।

४. रेलगाड़ीका इंजन वेगके साथ चलकर ठिकानेपर अकेला ही नहीं पहुँचता, बल्कि अपने साथ-साथ बहुत-से डिब्बोंको भी खींच-खींचकर पहुँचा देता है। यही हाल अवतारोंका भी है। पापके बोझसे दबे हुए अनन्त मनुष्योंको वे ईश्वरके पास पहुँचा देते हैं।

मंगलमयी गोमाताकी सेवा परम कल्याणकारी है

(गोलोकवासी जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)

वेदोंमें गोमाताको विश्वरूपा एवं विश्ववन्द्या बतलाया गया है। अथर्ववेदके गोसूक्तमें आया है—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

यहाँ इसे रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी बहन और अमृतकी नाभिस्वरूप कहते हुए इसे अहिंसनीया बतलाया गया है।

गोमाता विश्वकी माता हैं **'गावो विश्वस्य मातरः'**। ये हमारे जीवनकी सर्वस्व निधि हैं। भारतीय पुरातन परम्परा, संस्कृति, सभ्यता, मर्यादा एवं धर्मकी प्रतीक स्वरूप हैं। भारतीय धर्मके विभिन्न रूप गोमातापर आधारित हैं। अनादि वैदिक सनातनधर्म एवं तदन्तर्गत सभी धर्मोंके कार्य गोमाताके बिना सम्पादित नहीं हो सकते। ये हमारी परम पूज्या, परम वन्दनीया, परमाराध्या हैं। ये परम दिव्य अमृतको प्रदान करनेवाली हैं, यही हमारे पोषणकी एकमात्र आधारशिला हैं। इनके दूध, दही, नवनीत, घृत, मल, मूत्रादि सभी हमें बलिष्ठ, ओजसम्पन्न, कान्तिमान्, पवित्र, स्वस्थ, सद्‌बुद्धिमान् बनानेवाले हैं। इनके आश्रयसे मानवमात्र इहलौकिक एवं पारलौकिक दिव्यानन्दकी अनवरत कामना करते हैं तथा देशपर आनेवाले भीषण संकटोंका परिहार भी इन्हींके बलपर करनेमें पूर्ण समर्थ होते हैं। हमारे वेद, स्मृति, पुराणादि सकल शास्त्रोंमें इनकी महिमा, इनके महत्त्वका पद-पदपर वर्णन है। ये केवल अवध्या ही नहीं अपितु परम वन्दनीया, प्रातःस्मरणीया हैं। निखिलजन-हितकारिणी, परम पवित्रा, मंगलदायिनी एवं विविध पातकविनाशिनी हैं।

गो हमारे आचार, पवित्रता और आरोग्यकी आधाररूपा है। गोवंशकी श्रमशक्तिद्वारा पृथ्वीसे अन्नादिकी विपुल उत्पत्ति होती है, गोमयसे यज्ञभूमि, गृहस्थोंका आँगन और वानप्रस्थियोंकी कुटिया पवित्र होती है। गोघृतद्वारा यज्ञादिदेवोंकी तृप्ति होती है, गोदुग्ध मनुष्यके लिये तेज, बल, वृद्धि और स्फूर्तिदायक है। गोमय, गोदुग्ध तथा गोघृतकी उपयोगिता तो है ही, साथ ही सवत्सा गायके दानसे मनुष्य सहज ही वैतरणी नदीको पार करनेका अवसर प्राप्त कर लेता है। ब्रह्माण्डपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण आदि अनेक पुराणोंमें गोमाताको शक्तिरूपमें निरूपित किया गया है। यहाँतक कि परम परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णने अपना समस्त बाल्यकाल गोसेवामें ही व्यतीत कर दिया था तथा भगवान् श्रीरामके पूर्वज सम्राट् दिलीप इसी गोरक्षाके हित अपने प्राणोंतकका उत्सर्ग करनेको तत्पर हो गये।

ऐसी महिमामयी गोमाता आज अकालग्रस्त क्षेत्रोंमें अत्यन्त शोचनीय अवस्थामें अपना जीवनयापन कर रही हैं। गोकी महिमासे अज्ञात व्यक्ति अकालग्रस्त क्षेत्रोंमें आज भूखसे व्याकुल गोमाताको त्याग रहे हैं और भैंसोंका पालन-पोषण कर रहे हैं, यह कैसी विडम्बना एवं खेदास्पद स्थिति है! सम्भवतः भूख और कष्टसे जर्जर गोविन्दकी गायके क्रन्दनको हम सुन नहीं पा रहे हैं। वैदिक संस्कृतिकी पोषक, जिसका दर्शन पुण्यास्पद है, जो कष्टसहिष्णु है, उसके प्रति ऐसी उपेक्षा चिन्तनीय है। गोदुग्धकी महिमाका बखान तो हम करते हैं, पर वह गोसंरक्षणके बिना कैसे सम्भव होगा? सम्प्रति आज आवश्यकता है गोसंरक्षणकी। राष्ट्रकी समृद्धिदायिनी गाय विवश हो आज अपने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे हमारी ओर निहार रही है। ऐसे समयमें गोमाताकी रक्षा करना प्रत्येक भारतवासीका धार्मिक एवं नैतिक कर्तव्य है। यह एक महान् यज्ञ है, जिसमें सभीको सक्रिय सहयोग देना है। जिनकी गोमाताके प्रति श्रद्धा-निष्ठा है, वे इस व्रतको ग्रहण करेंगे तभी यह सफल हो सकेगा।

गोमाताका महत्त्व धार्मिक, आर्थिक, राष्ट्रोन्नति आदि जिस दृष्टिसे भी देखा जाय परम कल्याणकारी है। इसकी आराधनासे, इसके सेवा-कैंकर्यसे पुरुषार्थचतुष्टयकी उपलब्धि होती है। जिस देशमें गोरक्षण, गोसेवा होती है, वह कभी भी संक्रामक रोगसे, अर्थाभाव, अशान्ति एवं असुखसे नानाप्रकारके महातंकसे आक्रान्त नहीं होता। यथार्थतः देखा जाय तो गोमाताके बिना जीवन जीवन नहीं है, केवल असुरता है।

अपना कल्याण चाहनेवाले गृहस्थोंको अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे गोसेवा करना परम इष्ट है। यह सेवासे शीघ्र ही धन, सम्पत्ति, आरोग्य आदि सुखकर साधन सुलभ करा देती है। परम पवित्र सात्त्विक सर्वोपकारी धेनु सर्वथा अर्चनीय, वन्दनीय और अवध्य है। यह सर्वदेवमयी है, परम हितैषिणी और परमात्माकी मांगलिक शक्ति है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

वैराग्य और भजन कैसे हो ?

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका एक पत्र पहले मिला था। कुछ दिन बाद दूसरा भी मिला। पहले पत्रका जवाब नहीं दिया जा सका, इसके लिये किसी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये। आप मेरे पत्रकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, यह आपके बड़े प्रेमकी बात है। इतना प्रेम करनेवाले प्रेमियोंको मैं समयपर उनके पत्रका उत्तर भी नहीं लिख पाता, इस अपराधसे छूटनेके लिये भी प्रेमियोंके प्रेमका ही भरोसा है। अपनी शक्तिसे तो कुछ होता नहीं दीखता। प्रेमके सामने कोई शक्ति कुछ काम भी नहीं करती। 'हर समय वैराग्य बना रहे तथा भगवान्का स्मरण होता रहे'—इस तरहकी आपकी अभिलाषा बहुत ही सराहनीय है। जगत्की अनित्यता, दु:खरूपता और भयानकताका अच्छी तरह ज्ञान होनेके बाद जगत्के पदार्थोंमें आसक्ति नहीं रहती। जबतक इनमें नित्यता, सुख और रमणीयता भासती है तभीतक इनमें राग है। इसके लिये बार-बार संसारके भोगोंमें जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिरूप दु:ख-दोष देखना चाहिये तथा सत्संग, विचार और विवेकके द्वारा रमणीयता, सुख और नित्यताका बाध करना चाहिये। वास्तवमें ये सब विषय जिस रूपमें दीखते हैं, उस रूपमें हैं ही नहीं। हमें अपनी मोहाच्छादित दृष्टिके कारण ही इनका स्वरूप यथार्थ नहीं दीखता, इसीसे इनमें फँसावट हो रही है। जहरसे भरे हुए नकली सोनेके घड़ेके समान, अथवा सुगन्धित इत्र आदि वस्तुओंसे ढकी हुई विष्ठाके समान, अथवा सोनेकी खोलीसे मढ़े हुए जहरीले सर्पके समान, अथवा राखसे ढकी हुई प्रबल अग्निके समान संसारके विषय बार-बार मृत्यु देनेवाले, घृणित, जहरीले तथा जलानेवाले हैं। इस प्रकार समझकर—तथा इसकी परिवर्तनशीलता, क्षणभंगुरता, दृष्टिभेदसे अनुकूल एवं प्रतिकूलरूपता, वियोगशीलता, मृत्युमयता आदिपर विचार करके इनसे मन हटाना चाहिये। इनका रूप जब ठीक-ठीक समझमें आ जायगा तब इनमेंसे राग निकलकर आप ही इनसे वैराग्य हो जायगा। फिर जिस प्रकार हम जान-बूझकर अफीम नहीं खाते, अग्निमें हाथ नहीं डालते, साँपको हाथमें नहीं लेते, विष्ठाको नहीं छूते—इसी प्रकार विषयोंसे अलग हो जायँगे। इनमें प्रीति होना तथा उन्हें ग्रहण करना तो अलग रहा—इनका चिन्तन भी हमें नहीं सुहावेगा। विषयोंकी चर्चा भी खारी लगने लगेगी।

इस प्रकार भगवान्का स्मरण न होनेमें भी प्रधान कारण भगवान्के यथार्थ तत्त्व, प्रभाव, रहस्य, महिमा और गुणोंके ज्ञानका अभाव ही है। श्रीभगवान्के एक भी गुणका रहस्य, एक भी नामकी महिमा, एक भी चरित्रका प्रभाव, एक भी शक्तिका तत्त्व जान लिया जाय अथवा एक भी रूपकी जरा-सी भी झाँकीका ज्ञान भी हो जाय तो फिर भगवान्से क्षणभरके लिये भी चित्त न हटे। फिर विषयोंमें दु:ख-दोष देखकर उनसे चित्त हटानेकी आवश्यकता नहीं रहती, अपने-आप ही विषयोंमें आसक्ति नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार सूर्य भगवान्के उदय होनेपर दीपककी ओर कोई आकर्षण नहीं रहता, इसी प्रकार भगवान्की जरा भी झाँकी होनेके बाद विषयोंका सब रस फीका हो जाता है। असल बात तो यह है कि फिर उसकी तात्त्विक दृष्टिमें विषयोंका अस्तित्व ही नहीं रहता। एकमात्र सच्चिदानन्दघन भगवान्की ही अखण्ड, अचल, सनातन, अज, अविनाशी, सर्वव्यापिनी सत्ता रह जाती है। उसे फिर आनन्दघन परमात्माके सिवा और कुछ नहीं भासता। इस अवस्थामें उससे परमात्माका असली भजन अपने-आप ही होने लगता है। वास्तवमें सूर्य और दीपकके उदाहरणकी तुलना परमात्माके ज्ञान और विषयोंके साथ नहीं हो सकती, तथापि समझनेके लिये उदाहरण दिया जाता है।

संसारके विषयोंका स्वरूप तथा परमात्माकी महिमाको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये सत्संग तथा भजन ही प्रधान साधन है। वैराग्यवान् सच्चे विरक्त, अनन्य भगवत्प्रेमी और सम्यग्दर्शी ज्ञानियोंके सत्संगसे विषयोंकी तथा भगवान्की स्वरूप-स्थिति सुनने-जाननेमें आती है। फिर भजन करनेसे मलका नाश होनेपर सुनी तथा जानी हुई

बातोंको हृदय ग्रहण करता है। इसलिये जहाँतक बन पड़े सर्वस्व त्यागकर भी भजन तथा सत्संगके लिये मनुष्यको पूरा प्रयत्न करना चाहिये।

हर समय नामजप कैसे हो?

'हर समय भगवान्के नामका जप हुआ करे' इसका उपाय पूछा सो स्वाभाविक नाम-स्मरण तो भगवान्का महत्त्व जाननेसे ही होता है। भगवान्के नामपर जितना-जितना विश्वास, प्रेम बढ़ता है, उतना-उतना ही नामजप अधिक हो सकता है। भगवान्के नाममें भूल होनेमें अभ्यासकी कमी भी कारण है; परंतु प्रधान कारण तो विश्वास और प्रेमकी कमी ही समझना चाहिये। विश्वास तथा प्रेम भी भजन और सत्संगसे ही होते हैं। इसलिये सत्संग तथा नामजप-रूपी भजनका ही विशेष अभ्यास करना चाहिये। भजन करते-करते—भगवान्के नामजपका अभ्यास करते-करते विश्वास बढ़कर नामजपमें अपने-आप ही प्रगति हो सकती है। नामजपमें असली उन्नति तभी समझनी चाहिये, जब नामजपमें भूल नहीं हो तथा एक-एक नाममें ऐसा महान् आनन्द आवे कि जिसकी तुलना सम्राट्-पदकी प्राप्तिसे भी न हो सके तथा इतना प्रेम उपजे कि नाम-स्मरणके साथ ही रोमांच, अश्रुपात, गद्गदवाणी आदि होने लगे।

महापुरुषकी महिमा

महापुरुषोंकी दया बाबत लिखा सो तो ठीक है; परंतु मुझे आप महापुरुष समझते हैं, यह आपकी गलती है। मैं तो साधारण आदमी हूँ। यों तो एकलव्य भीलने पत्थरकी मूर्तिको भी अपनी श्रद्धासे द्रोणाचार्य समझ लिया था। इसी तरह आप किसीमें भी महापुरुषकी भावना कर सकते हैं; किंतु सचमुच मैं तो महापुरुषोंकी चरण-धूलिका भी भिखारीमात्र हूँ। रही महापुरुषोंकी दयाकी बात, सो महापुरुषोंकी तो सभीपर स्वाभाविक दया सर्वदा रहती है, किसीको सच्चे महापुरुष मिल जायँ तो उसका सहज ही कल्याण हो सकता है। उनके महापुरुषत्वपर और उनकी दयापर विश्वास करनेवाला और उनकी आज्ञा और रुचिके अनुसार आचरण करनेवाला एक-से-एक उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। अपनेको महापुरुषकी शरण कर दे तथा महापुरुषकी रुचिके अनुसार जीवन बना ले, तब तो उसी क्षण कल्याण हो जाय।

आपकी श्रीगंगाजीके तटपर जानेकी बहुत इच्छा होती है, सो श्रीगंगाजीका तट तो परम पवित्र है एवं वहाँ निवास करना भी बड़े सौभाग्यका चिह्न है, परंतु कभी कहीं जाने-आनेका संकल्प न करके श्रीभगवान्के नामका जप विशेष प्रेम तथा विशुद्ध मुख्य भावसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्के नामसे सब कुछ सहज ही हो सकता है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

भगवत्पूजाके भावसे धन कमाइये

सप्रेम हरिस्मरण! जगत्में सब स्वार्थका ही सम्बन्ध है। वस्तुतः कोई किसीका नहीं है। आपने माता-पिताकी सेवाके लिये धन कमानेकी आवश्यकता बतलायी, सो ठीक है। धन कमाना बुरी बात थोड़े ही है। अच्छी नीयतसे और न्यायपूर्वक धन जरूर कमाना चाहिये, परंतु यह वास्तवमें हाथकी बात नहीं है। प्रारब्धके अनुसार जैसा होना होगा, होगा। न्याययुक्त चेष्टा कीजिये। भगवान्की आज्ञा मानकर—भगवान्की पूजाकी बुद्धिसे धन कमानेका प्रयत्न कीजिये। भगवान्ने रच रखा होगा तो धन मिल जायगा। न रचा होगा तो नहीं मिलेगा। भगवान्के विधानपर संतोष करना चाहिये।

भगवत्प्रेमकी बात मैं क्या लिखूँ। मैं तो प्रेमसे बहुत दूर हूँ। हाँ, सुना है—भगवत्प्रेम बहुत ऊँची वस्तु है। मोक्षतककी इच्छाका त्याग करनेसे उस प्रेमकी प्राप्ति होती है। मैं तो एक श्रीभगवन्नामको जानता हूँ। उसका पूरा महत्त्व तो नहीं जानता—परंतु विश्वास है कि भगवन्नामसे सब कुछ हो सकता है और आपको भी उसीका आश्रय लेनेकी नम्र सलाह देता हूँ।

आप माता-पिताकी सेवाके उद्देश्यसे, इसी कर्मके द्वारा भगवत्पूजनके भावसे भगवन्नामका जप करते हुए धन कमानेका न्याय और सत्ययुक्त प्रयत्न करें और भगवान् फलरूपमें जो कुछ भी दें, उसीको सिर चढ़ायें। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीया रात्रिमें ४। ६ बजेतक	बुध	पुनर्वसु दिनमें ११। ३२ बजेतक	३जनवरी	× × ×
तृतीया ,, २। १ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, १०। ० बजेतक	४ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ३ बजेसे रात्रिमें २। १ बजेतक, **मूल** दिनमें १०। ० बजेसे।
चतुर्थी ,, १२। ९ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, ८। ३८ बजेतक	५ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ८। ३८ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ३ बजे।
पंचमी ,, १०। ३७ बजेतक	शनि	मघा प्रात: ७। ३१ बजेतक	६ ,,	**मूल** प्रात: ७। ३१ बजेतक।
षष्ठी ,, ९। २९ बजेतक	रवि	पू०फा० ,, ६। ४७ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। २९ बजेसे, **कन्याराशि** दिनमें १२। ४९ बजेसे।
सप्तमी ,, ८। ४७ बजेतक	सोम	हस्त रात्रिशेष ६। २९ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ८ बजेतक। **श्रीरामानन्दाचार्य जयन्ती।**
अष्टमी ,, ८। ३३ बजेतक	मंगल	चित्रा अहोरात्र	९ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ६। ४७ बजेसे।
नवमी ,, ८। ५० बजेतक	बुध	चित्रा प्रात: ७। ३ बजेतक	१० ,,	× × ×
दशमी ,, ९। ४२ बजेतक	गुरु	स्वाती दिनमें ८। ९ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १६ बजेसे रात्रिमें ९। ४२ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ३। १९ बजे, उ०षा०का सूर्य दिनमें १। ४७ बजे।
एकादशी ,, ११। ० बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, ९। ४२ बजेतक	१२ ,,	**षट्तिला एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १२। ४२ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ११। ४२ बजेतक	१३ ,,	**तिलद्वादशी, मूल** दिनमें ११। ४२ बजेसे।
त्रयोदशी ,, २। ४३ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, २। ३ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ४३ बजेसे, **धनुराशि** दिनमें २। ३ बजेसे, **प्रदोषव्रत, मकर-संक्रान्ति** रात्रिमें ८। ० बजे, **खरमास समाप्त, उत्तरायण प्रारम्भ, शिशिर-ऋतु** प्रारम्भ।
चतुर्दशी रात्रिशेष ५। १४ बजेतक	सोम	मूल सायं ४। ३६ बजेतक	१५ ,,	**खिचड़ी, भद्रा** दिनमें ३। ५८ बजेतक, **मूल** सायं ४। ३६ बजेतक।
अमावस्या अहोरात्र	मंगल	पू० षा० रात्रिमें ७। १४ बजेतक	१६ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें १। ५२ बजेसे, **मौनी अमावस्या, श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या प्रात: ७। २ बजेतक	बुध	उ० षा० ,, ९। ४४ बजेतक	१७ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ८। ५८ बजेतक	गुरु	श्रवण रात्रिमें ११। ५९ बजेतक	१८जनवरी	**चन्द्रदर्शन।**
द्वितीया ,, १०। ३५ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, १। ५१ बजेतक	१९ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें १२। ५४ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १२। ५४ बजे।
तृतीया ,, ११। ४४ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, ३। १६ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। ६ बजेसे, **सायन कुम्भका सूर्य** दिनमें ३। २३ बजे।
चतुर्थी ,, १२। २८ बजेतक	रवि	पू० भा० ,, ४। १२ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। २८ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ९। ५२ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १२। ३८ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, ४। ३५ बजेतक	२२ ,,	**वसन्तपंचमी, मूल** रात्रिमें ४। ३५ बजेसे।
षष्ठी ,, १२। १८ बजेतक	मंगल	रेवती ,, ४। ३१ बजेतक	२३ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ४। ३१ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ४। ३१ बजे।
सप्तमी ,, ११। २७ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, ४। ० बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ११। २७ बजेसे रात्रिमें १०। ५० बजेतक, **अचलासप्तमी, रथसप्तमी।**
अष्टमी ,, १०। १२ बजेतक	गुरु	भरणी ,, ३। १० बजेतक	२५ ,,	**अभिजितका सूर्य** दिनमें १०। ३३ बजे।
नवमी ,, ८। ३५ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, १। ५७ बजेतक	२६ ,,	**वृषराशि** दिनमें ८। ५० बजे, **गणतंत्रदिवस।**
दशमी प्रात: ६। ४० बजेतक	शनि	रोहिणी ,, १२। ३२ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** सायं ५। ३६ बजेसे रात्रिमें ४। ३२ बजेतक, **जया एकादशीव्रत** (स्मार्त्त)।
द्वादशी रात्रिमें २। १३ बजेतक	रवि	मृगशिरा ,, १०। ५६ बजेतक	२८ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ११। ४३ बजेसे, **एकादशीव्रत** (वैष्णव)।
त्रयोदशी ,, ११। ५२ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, ९। १६ बजेतक	२९ ,,	**सोमप्रदोशव्रत।**
चतुर्दशी ,, ९। ३१ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, ७। ३५ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। ३१ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें २। ० बजेसे।
पूर्णिमा ,, ७। १५ बजेतक	बुध	पुष्य ,, ६। ० बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। २२ बजेतक, **माघी पूर्णिमा, माघ स्नान** समाप्त, **मूल** सायं ६। ० बजेसे, **चन्द्रग्रहण**—सायं ५। १८ से रात्रिमें ८। ४१ बजेतक।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, शिशिर ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ५।१० बजेतक	गुरु	आश्लेषा सायं ४।३६ बजेतक	१फरवरी	**सिंहराशि** सायं ४।३६ बजेसे।
द्वितीया दिनमें ३।१९ बजेतक	शुक्र	मघा दिनमें ३।२५ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।३४ बजेसे, **मूल** दिनमें ३।२५ बजेतक।
तृतीया ,, १।५० बजेतक	शनि	पू०फा० ,, २।३७ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १।५० बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ८।३० बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थी, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।४६ बजे।
चतुर्थी ,, १२।४२ बजेतक	रवि	उ०फा० ,, २।८ बजेतक	४ ,,	**शुक्रोदय** रात्रिशेष ५।४४ बजे।
पंचमी ,, १२।१ बजेतक	सोम	हस्त ,, २।६ बजेतक	५ ,,	× × ×
षष्ठी ,,११।५० बजेतक	मंगल	चित्रा ,, २।३३ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।५० बजेसे रात्रिमें १२।० बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें २।१९ बजेसे, **धनिष्ठाका सूर्य** सायं ५।८ बजे।
सप्तमी ,, १२।९ बजेतक	बुध	स्वाती ,, ३।३१ बजेतक	७ ,,	**अष्टकाश्राद्ध** (अपराह्णमें)।
अष्टमी ,, १।३ बजेतक	गुरु	विशाखा सायं ५।२ बजेतक	८ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें १०।३९ बजेसे, **श्रीजानकी-जयन्ती।**
नवमी ,, २।२१ बजेतक	शुक्र	अनुराधा रात्रिमें ६।५४ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।१४ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ६।५४ बजेसे।
दशमी सायं ४।५ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, ९।१० बजेतक	१० ,,	**भद्रा** सायं ४।५ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ९।१० बजेसे।
एकादशी रात्रिमें ६।५ बजेतक	रवि	मूल ,,११।४३ बजेतक	११ ,,	**विजया एकादशीव्रत** (सबका), **मूल** रात्रिमें ११।४३ बजेतक।
द्वादशी ,, ८।१५ बजेतक	सोम	पू०षा० ,,२।२० बजेतक	१२ ,,	× × ×
त्रयोदशी,,१०।२२ बजेतक	मंगल	उ०षा० रात्रिमें ४।५२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।२२ बजेसे, **मकरराशि** दिनमें ८।५७ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत कुम्भसंक्रान्ति** प्रातः ६।४४ बजे, **महाशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी ,,१२।१७ बजेतक	बुध	श्रवण अहोरात्र	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।२० बजेतक।
अमावस्या ,,१।५२ बजेतक	गुरु	श्रवण प्रातः ७।११ बजेतक	१५ ,,	**कुम्भराशि** दिनमें ८।१० बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ८।१० बजे, **अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें २।५८ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा दिनमें ९।८ बजेतक	१६फरवरी	× × ×
द्वितीया ,, ३।३७ बजेतक	शनि	शतभिषा,,१०।४१ बजेतक	१७ ,,	**मीनराशि** रात्रिशेष ५।२८ बजेसे।
तृतीया ,, ३।४३ बजेतक	रवि	पू० भा० ,,११।४३ बजेतक	१८ ,,	**सायन मीनका सूर्य** रात्रिमें ३।६ बजे।
चतुर्थी ,, ३।१८ बजेतक	सोम	उ० भा० ,,१२।१३ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।३० बजेसे रात्रिमें ३।१८ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, शतभिषाका** सूर्य रात्रिमें ८।४६ बजे, **मूल** दिनमें १२।१३ बजेसे।
पंचमी ,,२।२५ बजेतक	मंगल	रेवती ,,१२।१५ बजेतक	२० ,,	**मेषराशि** दिनमें १२।१५ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें १२।१५ बजे।
षष्ठी ,, १।७ बजेतक	बुध	अश्विनी,,११।५१ बजेतक	२१ ,,	**मूल** दिनमें ११।५१ बजेतक।
सप्तमी ,, ११।२७ बजेतक	गुरु	भरणी ,,११।४ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।२७ बजेसे, **वृषराशि** सायं ४।४६ बजेसे।
अष्टमी,, ९।२९ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,,९।५६ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।२७ बजेतक, **होलाष्टारम्भ।**
नवमी ,,७।२३ बजेतक	शनि	रोहिणी ,,८।३३ बजेतक	२४ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ७।४७ बजेसे।
दशमी सायं ४।५९ बजेतक	रवि	मृगशिरा प्रातः ६।५९ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।४७ बजेसे।
एकादशी दिनमें २।३५ बजेतक	सोम	पुनर्वसु रात्रिमें ३।४० बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें २।३५ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें १०।५ बजेसे, **आमलकी एकादशीव्रत (सबका)**
द्वादशी ,, १२।१३ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, २।३ बजेतक	२७ ,,	**भौमप्रदोषव्रत, मूल** रात्रिमें २।३ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ९।५८ बजेतक	बुध	आश्लेषा,,१२।३७ बजेतक	२८ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें १२।३६ बजेसे।
चतुर्दशी प्रातः७।५३ बजेतक	गुरु	मघा ,,११।२३ बजेतक	१ मार्च	**भद्रा** प्रातः ७।५३ बजेसे रात्रिमें ६।५८ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ११।२३ बजेतक, **पूर्णिमा, होलिकादाह भद्रा** (रात्रिमें ६।५८)-के बाद।

कृपानुभूति

भगवत्कृपाकी प्रत्यक्ष अनुभूति

घटना २९ जुलाई २०१४ ई०की है—वह भयावह हादसा आज भी हमारी आँखोंके सामने चलचित्र-सा चलायमान रहता है, जो हमारे घनिष्ठ परिचित श्रीराजकुमारजीके सुपुत्र शैलेष तथा उनके परिवारके साथ हुआ। घटना इस प्रकार है—

ऊटीसे कुछ जोड़े तीन कारोंमें सवार होकर शाम सात बजे अपने निवास-स्थानसे कालीकट (केरल)-की ओर निकले। रात दस बजेके करीब पीछेवाली गाड़ीने आगेवाली गाड़ीको सूचित किया कि दो मोड़ निकल जानेके बाद भी बीचवाली गाड़ी दिखायी नहीं दे रही है। अत: सबलोग वहींपर रुककर किसी अनहोनीकी आशंकासे अत्यन्त चिन्तित स्थितिमें उनकी खोज करने लगे। कालीकट कोई ५० से ६० किलोमीटर दूर ही रह गया था। स्थानीय पुलिसको भी सूचित किया गया, सभी थककर हार गये, परंतु कारका कहीं पता नहीं चल पाया। कुछ राह-चलते राहगीरोंने मदद की तथा उनकी सूझ-बूझसे एक जगह कारके पहियोंके निशान दिखायी दिये और कारका पता चला। कार रक्षक-पट्टीके बीचमेंसे तीन पलटी खाकर २०० फिट नीचे खाईमें पेड़ोंमें उलझी हुई थी।

इस समय १२:३० बज चुके थे। वहाँ बहते झरनेके कारण आवाजका आदान-प्रदान नहीं हो पा रहा था अर्थात् न कारमें फँसे लोगोंको हमारी आवाज सुनायी दे रही थी और न हमारी आवाज उन लोगोंतक पहुँच रही थी। आखिर उन्होंने गाड़ीके बोनटपर लकड़ीसे पीटना आरम्भ किया। उस ध्वनिसे आकर्षित होकर ही उनका पता चल पाया कि वे लोग वहाँ हैं। उनके मोबाइल बन्द हो चुके थे, जहाँ यह हादसा हुआ वह स्थान भयंकर विषधर सर्पोंकी निवास-स्थली थी तथा बरसातके कारण जोंकें भी बहुत फैली हुई थीं।

रोंगटे खड़े कर देनेवाला दृश्य था! आखिर साहस करके सात-आठ लोग नीचे उतरे। शैलेष, उनकी पत्नी तथा दोनों पुत्रियोंको ऊपर लेकर आये, तबतक रातके २:३० बज चुके थे।

जो लोग उनको ऊपर लानेमें सहायता कर रहे थे। उन्होंने बतलाया कि हमें जरा भी किसीमें वजनकी अनुभूति नहीं हुई (हालाँकि शैलेष शरीरसे कुछ भारी ही थे)। ऐसा लग रहा था कि कोई अदृश्य शक्ति उन्हें ऊपर लानेमें हमारी मदद कर रही है।

यहाँ आपको बता दें कि यह हादसा सावनमें हुआ था और पिछले ११ सावनसे शैलेषके पिता श्रीराजकुमारजीके यहाँ अखण्ड रामायणका पाठ होता है। उन सबको ईश-कृपाकी प्रत्यक्ष अनुभूति हो रही थी। शैलेषकी छातीकी तीन पसलियाँ चटक गयी थीं तथा उनकी पत्नीके बायीं तरफ गाल, नाक, कूल्हे एवं पाँवमें पाँच जगह फ्रैक्चर थे। दोनों बच्चियाँ सुरक्षित थीं, उन्हें खरोंचतक नहीं आयी थी। फिर उन्हें सीधे हॉस्पिटल ही ले गये।

जिन लोगोंने उन्हें बचानेमें मदद की, उन्हें विभिन्न संस्थाओं और तथा समाजकी ओरसे सम्मानित किया गया एवं कालीकटकी पुलिसने भी उन्हें बहादुरीका अवार्ड दिया। भगवत्कृपासे उनका परिवार आज सुरक्षित है, परंतु इस घटनासे मुझे पूरा विश्वास हो गया कि परमात्माका स्मरण हमें बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे बचा लेता है। —**स्नेहलता मालपानी**

चरन-कमल बंदौं हरि-राइ

चरन-कमल बंदौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ॥
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र थराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ॥

[सूरसागर]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मेरी पहली कमाई

बड़े-बुजुर्गों और असहायजनोंद्वारा अन्तरात्मासे दिया गया आशीर्वाद किस तरहसे व्यक्तिके मनोरथको सफल करता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मेरी पहली कमाईसे सम्बन्धित है।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयद्वारा संचालित तीनवर्षीय 'डिप्लोमा इन रूरल सर्विसेज' (ग्रेज्यूएशनके समकक्ष) प्राप्त करनेके पश्चात् भी मुझे नौकरी नहीं मिल रही थी। १९६२ के भारत-चीन-युद्धके पश्चात् वैसे भी नौकरीपर पाबन्दी थी। पिताजी सेवानिवृत्त हो चुके थे। अत: बड़े भाई साहबकी सलाहके अनुसार मुझे स्टेनोग्राफी सीखने अजमेर भेजा गया। उस समय बताया गया कि ३-४ माहमें प्रशिक्षण पूरा करनेतक मुझे ६० रुपये प्रतिमाह मिलेगा।

अजमेरके सिन्धी मोहल्लेमें एक कोठरीका प्रबन्ध किया गया, ३० रुपये माहमें भोजनालयमें व्यवस्था की गयी और एक इन्स्टीट्यूटमें स्टेनोग्राफी सीखनेहेतु एडमीशन हो गया। एक माहमें ही ज्ञात हो गया कि माहभरके खर्चेके लिये ६० रुपयेकी राशि बहुत कम है। भाई साहबके एक मित्रको समस्या बतायी तो उन्होंने अपने एक अधिकारीकी पुत्री, जो सातवीं कक्षामें पढ़ती थी, को ट्यूशन पढ़ानेहेतु मुझे भेज दिया। मैं चार किलो मीटर दूर उस बच्चीको पढ़ाने जाने लगा, पारिश्रमिक तय हुआ २० रुपये महीना।

इसी बीच मेरी बगलवाली कोठरीमें एक सिन्धी बुजुर्ग महिला रहती थी, जो छोटी-मोटी सिलाई करके, सैम्पलहेतु छोटी थैली सिलकर अपना गुजारा करती थी। उसका लड़का माधव जोवनेरमें छोटी-सी नौकरी करता था तथा कभी-कभी ही माँको पैसा भेजता था। अब वह प्राय: काम नहीं कर पा रही थी; क्योंकि उसे कम दिखायी देता था। पड़ोसी लोग उसे भोजन दे देते थे, मैं भी २-४ आनेका सामान लाकर पैसे नहीं लेता था। एक दिन जब वह खूब रो रही थी, तब मैं उसे सरकारी अस्पताल ले गया। आँखोंके डॉक्टरने जाँचकर कहा कि मोतियाबिन्द तो नहीं है, नजर कमजोर है, चश्मा लगेगा। अब हम लोग चश्मेकी दुकानपर गये और डॉक्टरके पर्चेके अनुसार सस्ता-सा चश्मा कितनेमें बनेगा? यह जानना चाहा। चश्मेवालेने कहा कि सबसे सस्ता चश्मा २५ रुपयेमें बनेगा।

महिला बोली—'मेरे पास खानेको नहीं है तो चश्मा कैसे बनवाऊँगी?' दूसरे दिन मैंने उस महिलाके लड़के माधवको पोस्टकार्ड लिखा, सारी स्थिति बतायी और कमसे कम २५ रुपये भेजनेको कहा। एक सप्ताह बीत जानेपर न तो लड़का आया और न उसने पैसे ही भेजे। अब महिला हमेशा रोती रहती थी।

इसी बीच मेरे ट्यूशनका महीना पूरा होते ही मुझे पैसा मिल गया, जीवनकी पहली कमाईकी खुशी सँभाले नहीं सँभल रही थी। मैंने सोचा खींचतान चलती रहेगी, पहली कमाईसे माँके लिये साड़ी खरीदी जाय, परंतु रातको पड़ोसिन महिलाका विलाप सुनकर मनमें आया कि पहली कमाईसे उसका चश्मा बनवा दूँ। साड़ी और चश्माको लेकर मनमें द्वन्द्व आ गया। अन्ततः निश्चय किया कि चश्मा बनवाया जाय, साड़ी तो अगले मासमें भी आ सकती है।

अगले दिन मैं पर्चा लेकर चश्मेकी दूकानपर गया और कहा कि चश्मा २० रुपयेमें बना दीजिये, दूकानदारने साफ मना कर दिया। दूसरे दिन मैंने पुनः जाकर चश्मेवालेसे कहा कि मैं शेष ५ रुपये घरसे पैसा आनेपर या ट्यूशनका पैसा मिलनेपर दे दूँगा। मेरे इस तरह आग्रह करने और मनुहार करनेपर चश्मेवाला बोला, 'वह महिला आपकी कौन है?' तब मैंने पूरी बात बतायी और कहा कि मैं मानवताके नाते उसकी मदद

करना चाह रहा हूँ, ताकि वह अपनी रोटी-रोजी चला सके। चश्मेवाला मेरी बातसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने बीस रुपयेमें ही चश्मा बना दिया।

चश्मा लेकर जब मैं माधे माँ (माधवकी माँ)-के पास पहुँचा तो उसे सहजमें विश्वास नहीं हो रहा था कि एक बेरोजगार लड़का उसके लिये चश्मा बनवायेगा। उसने चश्मा लगाया, आसपासकी चीजें देखीं, सिलाई मशीनमें धागा पिरोया और दोनों हाथोंसे मेरा मुँह सहलाया, हाथ ऊँचे करके प्रार्थनाके स्वरमें कुछ बुदबुदायी। उसकी प्रसन्नताका पारावार नहीं था, उसने सारे मोहल्लेमें घूम-घूमकर अपना चश्मा दिखाया और मेरे बारेमें बताया।

इस घटनाके १४ दिन पश्चात् मेरा नियुक्ति-पत्र आया। मैं यह जानकर अचम्भित था कि ४ मई १९६४ ई० को मैंने वृद्धाको चश्मा दिया था और उसी दिन मेरे नियुक्ति-पत्रपर डायरेक्टरने हस्ताक्षर किये थे। कहाँ मैं नौकरी पानेके लिये स्टेनोग्राफी सीख रहा था, कहाँ यह नौकरी मुझे मेरे डिप्लोमा कोर्सके आधारपर मिल गयी, जो उससे अधिक गौरवपूर्ण थी। आज पचास वर्षसे भी अधिक समय बीत जानेपर मैं यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि यह घटना संयोगमात्र थी या उस वृद्धाका आशीर्वाद! निश्चय ही यह उस वृद्ध महिलाकी अन्तरात्मासे निकला आशीर्वाद ही था।

घर पहुँचनेपर जब यह घटना मैंने अपनी माँको बतायी तो उन्होंने मुझे गले लगा लिया और कहा, 'बेटा! तुम्हारी कमाईकी साड़ी तो मैं जीवनभर पहनूँगी, पर उस वृद्धाको चश्मा देकर तुमने उसकी रोटी-रोजीका द्वार खोला तो उस करुणामय प्रभुने नौकरी देकर तुम्हारा द्वार भी खोल दिया, उसकी महिमा अपरम्पार है।'

—**सुरेशचन्द्र पाराशर**

(२)

आईटी कम्पनी छोड़ तीन गायसे शुरू कर दी डेयरी

मेरे पूर्वज काफी पहले राजस्थानसे बंगलूरू आकर बस गये थे, सो हम राजस्थानीके बजाय कन्नड़ अधिक हैं। पिताजी सार्वजनिक क्षेत्रके उपक्रम भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेडमें एक अधिकारी थे, घरका माहौल पढ़ने-लिखनेवाला था। पाँच भाइयोंमें मैं सबसे छोटा था, सो मुझपर कोई खास जिम्मेदारी नहीं थी। सिर्फ पढ़ाई करनी थी और करियर बनाना था। स्कूली पढ़ाईके बाद बंगलूरूके एक कॉलेजसे मैंने मेकेनिकल इंजीनियरिंगकी पढ़ाई की और फिर एम०बी०ए० भी कर लिया। इसके बाद २००१ ई० में मुझे डेल कम्पनीमें नौकरी भी मिल गयी। ठीक-ठाक पैसे मिल रहे थे। किसी चीजकी कमी नहीं थी, मगर मनमें कुछ उथल-पुथल थी। करीब सात साल डेलमें नौकरी करनेके बाद मैंने २००७ ई० में अमेरिकी दिग्गज कम्पनी अमेरिकन ऑन लाइन (ए०ओ०एल०) ज्वाइन कर ली, मुझे और ज्यादा पैसे मिलने लगे। मगर यह नौकरी भी मुझे रास नहीं आ रही थी। इस बीच २००८ ई० की मन्दीके दौरने आईटी जगत्में अफरा-तफरी मचा दी। एक दिन एक कम्पनीमें काम करनेवाली मेरे एक मित्रका फोन आया कि उसकी कम्पनी एक झटकेमें करीब छह हजार कर्मचारियोंको बाहरका रास्ता दिखा रही है। हालाँकि इस सूचीमें उसका नाम नहीं था। इसके बावजूद आईटी उद्योगकी इस अफरा-तफरीने उसे बेचैन कर दिया। नौकरीकी अनिश्चितता, ऊपरसे शहरी जीवनकी भाग-दौड़ने मेरे जैसे अनेक लोगोंको परेशान कर दिया। हालाँकि मेरी नौकरी बहुत सुरक्षित थी, पर हमारे आस-पास जो घट रहा था, वह कुछ और सोचनेको मजबूर कर रहा था। वैसे भी मुझे प्रकृतिके नजदीक रहना अधिक पसन्द था। मैं अक्सर सप्ताहान्तमें शहरसे दूर एकान्त क्षेत्रमें चला जाता था और वहाँ वक्त बिताता था। आखिरकार २००९ ई० में एक दिन मैंने ए०ओ०एल० को हमेशाके लिये अलविदा कह दिया। तब मेरी उम्र ३३ वर्षके

करीब थी। नौकरी छोड़नेका फैसला करते समय मेरे दिमागमें खेती और डेयरीका ख्याल आया। हालाँकि मुझे इसका कोई अनुभव नहीं था। मैंने तीन गायें खरीदीं और फिर बंगलूरूसे चालीस किलोमीटर दूर दोद्दबलपुर गाँवमें स्थित तीन एकड़ खेतीकी पैतृक जमीनपर अपनी डेयरी शुरू कर दी। शुरुआती महीनोंमें इससे होनेवाली आय डेल या ए०ओ०एल०-में मुझे मिलनेवाले वेतनकी तुलनामें कुछ भी नहीं थी। मगर मेरे लिये सन्तोषकी बात थी कि मैं अपना काम कर रहा था, बेवजहके तनाव और भागदौड़से मुक्त हो गया था। इसी बीच २०१२ ई० और २०१३ ई०—लगातार दो वर्षोंमें पड़े सूखेसे मुझे काफी धक्का लगा। तबतक मेरे साथ कुछ और लोग जुड़ गये थे। मगर हम मुश्किलसे मवेशियोंका खर्च उठा पा रहे थे। हमारे पास लिक्विड मनी नहीं थी। हमने अपना बिजनेस मॉडल बदलनेके बारेमें विचार किया। हमने जब इधर-उधर कुछ खँगालना शुरू किया, तो पता चला कि डेयरी फार्मिंगका मतलब सिर्फ दूध बेचना नहीं है। इसमें चारा बेचनेसे लेकर दूधकी ट्रांसपोर्टिंग और मवेशियोंकी दवाई बेचनेसे लेकर गायकी ब्रीडिंग (पालन-पोषण) भी शामिल है। इसके बाद हमने गाय की ब्रीडिंगका काम शुरू कर दिया। इसके लिये हम तीन माहसे छः माहकी बछिया खरीदते हैं, फिर उसे डेढ़ वर्षतक पालते हैं और जब वह दूध देनेलायक गाय बन जाती है तो उसे बेच देते हैं। एक बारमें हमारे पास करीब १२० बछिया होती हैं। मैंने अर्बन डेयरी फार्मर नामसे एक मार्गदर्शिका भी तैयार की है, जिसके जरिये कोई भी नौकरी करते हुए भी डेयरी शुरू कर सकता है। अबतक मैं पंचानबे कार्यशालाएँ आयोजितकर ६०० पेशेवरोंको प्रशिक्षित कर चुका हूँ।

—**संतोष सिंह** [स्रोत:अमर उजाला, ११ अप्रैल २०१७]

(३)

जयप्रकाश बाबूकी परदुःखकातरता

लोकनायक जयप्रकाशजी मेरे पिताजीके बड़े आत्मीय थे। जिन दिनों पिताजी जसलोक अस्पतालमें किडनीकी चिकित्सा (डाइलेसिस)-हेतु एडमिट थे, उन्हीं दिनों बाबू जयप्रकाश नारायणकी किडनी भी अचानक चण्डीगढ़में खराब हो गयी। उन्हें भी जसलोक अस्पतालमें डॉ० मणीकी चिकित्सामें दाखिल किया गया। वैसे उन दिनों किडनीकी चिकित्सा तो केवल डाइलेसिस ही थी।

एक दिन पिताजीने व्हील चेयरकी माँग की और कहा—मैं जयप्रकाश बाबूसे मिलने जाऊँगा। मुझसे बोले कि तुम्हारे पास रुपया हो तो मुझे दो। जयप्रकाश बाबूका कमरा भी उसी फ्लोरपर था, जहाँ पिताजीका कमरा था। पिताजीको वहाँ पहुँचाकर मैं वापस आ गया। दोनों साथी करीब एक घण्टा साथ रहे और पुराने दिनोंकी यादें ताजा करते रहे। इस बीच जयप्रकाश बाबूका डाइलेसिसपर जानेका समय हो गया। पिताजीने उन्हें रुपयेका लिफाफा थमाया। जयप्रकाश बाबू बोल पड़े—रामेश्वरजी! मुझे आज पैसेकी बड़ी आवश्यकता थी। जनताके विलक्षण नेता जयप्रकाशकी यह स्थिति थी। जिसके इशारेपर सत्ता पलट गयी। उसके ये वाक्य! तत्पश्चात् अपने सचिव अब्राहमसे बोले कि 'अब्राहम! बाहर जो बाई बैठी है, उसे ये रुपये दे आओ। उसके पतिकी डाइलेसिस पैसों बिना रुकी हुई है।'

जयप्रकाश बाबूकी पिताजीसे यह अन्तिम मुलाकात थी। उस समय डायलेसिस अत्यन्त कष्टदायी चिकित्सा-प्रणाली थी, उस भयंकर पीड़ाके बीच भी उन्हें दूसरेकी पीड़ा ही अधिक पीड़ित करती थी। लोककी पीड़ाके प्रति इसी संवेदनशीलता और परदुःखकातरताने उन्हें लोकनायक बना दिया।—**नन्दलाल टांटिया**

मनन करने योग्य

इन्द्रिय-संयम

मथुराकी सर्वश्रेष्ठ नर्तकी, सौन्दर्यकी मूर्ति वासवदत्ताकी दृष्टि अपने वातायनसे राजपथपर पड़ी और जैसे वहीं रुक गयी। पीत-चीवर ओढ़े, भिक्षापात्र लिये एक मुण्डितमस्तक युवा भिक्षु नगरमें आ रहा था। नगरके प्रतिष्ठित धनी-मानी लोग एवं राजपुरुष-तक जिसकी चाटुकारी किया करते थे, जिसके राजभवन-जैसे प्रासादकी देहलीपर चक्कर काटते रहते थे, जिसके साथ केवल क्षणभर बात करनेके लिये नौजवान अपना सर्वस्व लुटानेको प्रस्तुत हो जाया करते थे; वह नर्तकी भिक्षुको देखते ही उन्मत्तप्राय हो गयी।

इतना सौन्दर्य! ऐसा अद्भुत तेज! इतना सौम्य मुख!—नर्तकी दो क्षण तो ठिठकी देखती रह गयी और फिर जितनी शीघ्रता उससे हो सकी, उतनी शीघ्रतासे दौड़ती हुई सीढ़ियाँ उतरकर अपने द्वारपर आयी।

'भन्ते!' नर्तकीने भिक्षुको पुकारा।

'भद्रे!' भिक्षु आकर मस्तक झुकाये उसके सम्मुख खड़ा हो गया और उसने अपना भिक्षापात्र आगे बढ़ा दिया।

'आप ऊपर पधारें!' नर्तकीका मुख लज्जासे लाल हो उठा था; किंतु वह अपनी बात कह गयी--'यह मेरा भवन, मेरी सब सम्पत्ति और स्वयं मैं अब आपकी हूँ। मुझे आप स्वीकार करें।'

'मुझे धर्म-भिक्षा चाहिये। काम-भिक्षाका समय अब नहीं रहा! भगवान् तथागत तुम्हारा कल्याण करें; मैं फिर तुम्हारे पास आऊँगा।' भिक्षुने मस्तक ऊपर उठाकर बड़ी बेधक दृष्टिसे नर्तकीकी ओर देखा और पता नहीं क्या सोच लिया उसने।

'कब?' नर्तकीने हर्षोत्फुल्ल होकर पूछा।

'समय आनेपर!' भिक्षु यह कहते हुए आगे बढ़ गया था। वह जबतक दीख पड़ा, नर्तकी द्वारपर खड़ी उसीकी ओर देखती रही।

× × ×

मथुरा नगरके द्वारसे बाहर यमुनाजीके मार्गमें एक स्त्री भूमिपर पड़ी थी। उसके वस्त्र अत्यन्त मैले और फटे हुए थे। उस स्त्रीके सारे शरीरमें घाव हो रहे थे। पीव और रक्तसे भरे उन घावोंसे दुर्गन्ध आ रही थी। उधरसे निकलते समय लोग अपना मुख दूसरी ओर कर लेते थे और नाक दबा लेते थे। यह नारी थी नर्तकी वासवदत्ता! उसके दुराचारने उसे इस भयंकर रोगसे ग्रस्त कर दिया था। सम्पत्ति नष्ट हो गयी थी। अब वह निराश्रित मार्गपर पड़ी थी।

सहसा एक भिक्षु उधरसे निकला और वह उस दुर्दशाग्रस्त नारीके समीप खड़ा हो गया। उसने पुकारा—'वासवदत्ता! मैं आ गया हूँ।'

'कौन?' उस नारीने बड़े कष्टसे भिक्षुकी ओर देखनेका प्रयत्न किया।
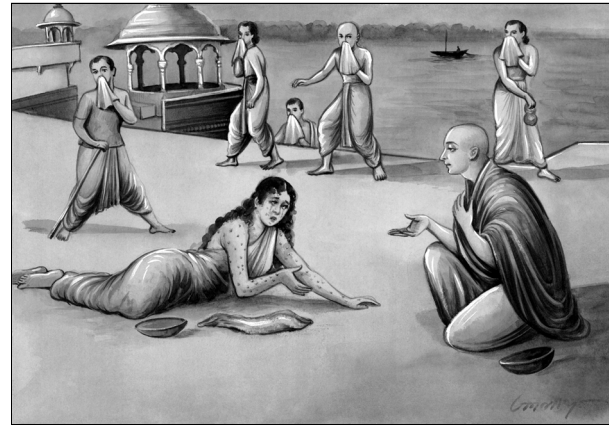
'भिक्षु उपगुप्त!' भिक्षु बैठ गया वहीं मार्गमें और उसने उस नारीके घाव धोने प्रारम्भ कर दिये।

'तुम अब आये? अब मेरे पास क्या धरा है। मेरा यौवन, सौन्दर्य, धन आदि सभी कुछ तो नष्ट हो गया।' नर्तकीके नेत्रोंसे अश्रुधार चल पड़ी।

'मेरे आनेका समय तो अभी हुआ है।' भिक्षुने उसे धर्मका शान्तिदायी उपदेश देना प्रारम्भ किया।

ये भिक्षुश्रेष्ठ ही देवप्रिय सम्राट् अशोकके गुरु हुए।

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

‘कल्याण’

-के ९१वें वर्ष (वि०सं० २०७३-७४, सन् २०१७ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

संकलित-सामग्री

पद्य-सूची

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपोंके महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
	भगवान् श्रीगणपति	
657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	४०
	भगवान् शिव	
1468	सं० शिवपुराण (विशिष्ट सं०) (अच्छी क्वालिटीके मोटे कागजपर)	२५०
789	सं० शिवपुराण	२००
1985	लिंगमहापुराण-सटीक	२२०
2020	शिवमहापुराणमूलमात्रम्	२७५
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	३५
1627	रुद्राष्टाध्यायी (सानुवाद)	३०
1954	शिव-स्मरण	१०
563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	५
228	शिवचालीसा (लघु आकारमें भी)	४
230	अमोघ शिवकवच	४
	भगवान् विष्णु	
48	श्रीविष्णुपुराण (सटीक)	१५०
1364	,, (केवल हिन्दी)	१००

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
819	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (शांकरभाष्य)	३०
1801	,, (हिन्दी-अनुवादसहित)	१०
225	गजेन्द्रमोक्ष	४
229	श्रीनारायणकवच	४
1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१५
	भगवान् श्रीकृष्ण	
571	श्रीकृष्णलीला-चिन्तन	१५०
517	गर्ग-संहिता	१५०
1927	जीवन-संजीवनी	४५
555	श्रीकृष्णमाधुरी	३५
62	श्रीकृष्णबालमाधुरी	३५
547	विरह-पदावली	३०
864	अनुराग-पदावली	४०
49	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	९०
50	पद-रत्नाकर	११०
1862	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्र (हिन्दी-अनुवाद)	१७
1748	संतानगोपालस्तोत्र	८

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
	भगवान् श्रीराम	
574	योगवासिष्ठ	१८०
103	मानस-रहस्य, सजिल्द	६०
231	रामरक्षास्तोत्र	४
	श्रीहनुमान्‌जी	
42	हनुमान-अङ्क—परिशिष्टसहित	१५०
185	भक्तराज हनुमान्	१०
112	हनुमान-बाहुक	५
	महाशक्ति भगवती	
1897 1898	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण-सटीक दो खण्डोंमें सेट	४००
1133	सं० देवीभागवत	२६५
41	शक्ति-अङ्क	२००
1774	श्रीदेवीस्तोत्ररत्नाकर	४०
2003	शक्तिपीठदर्शन	२०
	भगवान् सूर्य	
791	सूर्याङ्क	१३०
211	आदित्यहृदयस्तोत्र	४

माघ-मेला प्रयाग (सन् २०१८)

श्रद्धालुओंको चाहिये कि पौष शुक्ल पूर्णिमा (२ जनवरी, २०१८ ई०)-से माघ शुक्ल पूर्णिमा (३१ जनवरी, २०१८ ई०)-तक पूरे एक मासतक कल्पवासी बनकर प्रयागमें रहें और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नित्यप्रति पुण्यतोया त्रिवेणीमें स्नान-लाभ करते हुए धर्मानुष्ठान, सत्सङ्ग तथा दान-पुण्य करें—

स्नानकी प्रमुख तिथियाँ

१-पौष शुक्ल १५,	मंगलवार	(२ जनवरी, २०१८ ई०)	माघस्नानारम्भ।
२-माघ कृष्ण १४,	सोमवार	(१५ जनवरी, २०१८ ई०)	मकर-संक्रान्ति।
३-माघ कृष्ण ३०,	मंगलवार	(१६ जनवरी, २०१८ ई०)	मौनी अमावस्या।
४-माघ शुक्ल ५,	सोमवार	(२२ जनवरी, २०१८ ई०)	वसन्तपंचमी।
५-माघ शुक्ल १५,	बुधवार	(३१ जनवरी, २०१८ ई०)	माघी पूर्णिमा।

माघ-मेला प्रयाग क्षेत्रमें विशेष पुस्तक-स्टॉल लगानेका विचार है।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१८) अब उपलब्ध—मँगवानेमें शीघ्रता करें।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ७५

बँगला (कोड 1489), ओड़िआ (कोड 1644), तेलुगु (कोड 1714) प्रत्येकका मूल्य ₹ ७५

पुस्तकाकार— सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ६०

पॉकेट साइज— सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ ३५

लघु आकार— सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 1769)— विशेष प्रकारके पतले पेपरपर मूल्य ₹ २०

प्र० ति० २०-११-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2017–2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2017–2019

जनवरी २०१८ (कल्याण वर्ष ९२)-का विशेषाङ्क—

'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' (उत्तरार्ध), [हिन्दीभाषानुवाद—श्लोकाङ्कसहित]

महापुराण संख्यामें अठारह हैं। इनमें शिवपुराणका विशेष माहात्म्य है। पिछले वर्ष कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें श्रीशिवमहापुराणका पूर्वार्ध प्रकाशित किया गया था जिसकी पाठक महानुभावोंने बहुत प्रशंसा की। इस वर्ष प्रकाशित होनेवाले उत्तरार्धमें मानवजीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। शिवज्ञान, शैवीदीक्षा तथा शैवागमका यह अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है। साधना एवं उपासना-सम्बन्धी अनेकानेक सरल विधियाँ इसमें उल्लिखित हैं। इसकी कथाएँ अत्यन्त मनोरम, रोचक तथा बड़े ही कामकी हैं। मुख्यरूपसे इस अंकमें भगवान् शिवके लीलावतारोंकी कथाएँ, द्वादश ज्योतिर्लिंगों-उपलिङ्गोंके आख्यान, शिवरात्रि, पाशुपत आदि व्रतोंकी कथाएँ, शिवभक्तोंके रोचक आख्यान, अर्धनारीश्वरस्तोत्र एवं पञ्चाक्षर मंत्र आदिका माहात्म्य विस्तारसे वर्णित है। यह उच्चकोटिके सिद्धों, आत्मकल्याणकामी साधकों तथा साधारण आस्तिकजनों—सभीके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है।

वार्षिक शुल्क सजिल्द ₹२५०, पञ्चवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹१२५०

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

प्रेमके वशमें भगवान् (कोड 2117)—प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लगभग ७०-७५ वर्ष पूर्व दिये गये प्रवचन तथा उनके अंतरंग सत्संगियोंसे हुए पत्राचारको संकलित किया गया है। इसमें साधारण-से-साधारण व्यक्तिके लिये साधनमें लानेयोग्य बहुत-से साधन बतलाये गये हैं जिनसे पापी-से-पापी व्यक्ति भी अपना कल्याण कर सकते हैं। मूल्य ₹१५

सरल गीता (कोड 2099)—गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले पाठकोंको ध्यानमें रखकर उक्त गीताका प्रकाशन किया गया है। इसमें प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। इससे श्लोकोंके उच्चारणमें सहायता मिल सकती है। मूल्य ₹३५

कोड	पुस्तक-नाम	नेपाली मूल्य रु.	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2094	गीता-माधुर्य (नेपाली)	२५	१५	2091	सावित्री और सत्यवान् (बँगला)	५
2095	प्रश्नोत्तरमणिमाला (,,)	३०	१८	2092	नल-दमयन्ती (बँगला)	६
2096	उपनिषद्का चौध रत्न (,,)	१६	१०	2093	गीता पढ़नेके लाभ (बँगला)	४
2097	विदुरनीति (,,)	३२	२०	2087	सुख-शान्तिपूर्वक जीनेकी कला (बँगला)	१०
2090	भूले न भुलाये (ओड़िआ)	—	२२	2089	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण (तेलुगु)	१००
2106	श्रीदुर्गासप्तशती (मलयालम)	—	४५			

पुनः छपकर तैयार—माघमास-माहात्म्य (कोड 1588)—इन महीनोंमें भगवान्की प्रीतिके उद्देश्यसे किये जानेवाले पुण्यकर्म अक्षय हो जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें पद्मपुराणमें वर्णित माघमासके माहात्म्यका संकलन किया गया है। मूल्य ₹१०